Chapter-1

प्रथम अध्याय

भारतीय समाज का मध्यमवर्ग – विविध रूपः

समाज शब्द का अर्थ बड़ा विवादास्पद और उलझा हुआ है। दैनिक जीवन में हम समाज शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के सामूहिक संगठन या समूह के लिए करते हैं। मनुष्य इसी समाज में मिलता–जुलता है, परस्पर सम्बन्ध रखता है, साथ–साथ समाज की मान्यताओं, आकांक्षाओं, प्रथाओं, रुढ़ियों एवम् आदर्शो के अनुरूप कार्य करता है। मनुष्य अपने जीवन में जो भी कार्य करता है वह समाज के अंतर्गत रहकर ही करता है। समाज सामाजिक सम्बन्धों के द्वारा निर्मित होता है।

समाज शब्द के सम्बन्धं में 'समाजशास्त्र की प्राथमिक धारणाएँ' नामक पुस्तक में लेखक निर्णय लेते हैं – ''(i) कि समाज एक व्यवस्था है। (ii) सामाजिक सम्बन्धों में मानसिक अन्तःक्रिया सन्निहित है। (iii) समाज व्यक्ति से बाह्य है। (iv) समाज में समानता और भिन्नता दोनों हैं।''[1]

समाज की परिभाषाएँः

अनेक विद्वानों ने समाज को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

(i) गिडिंग्ज – समाज स्वयं एक संघ है, संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर आबद्ध है।''[2]

(ii) कुले – 'समाज रीतियों या प्रक्रियाओं का जटिल ढाँचा है जिनमें से प्रत्येक जीवित है और एक–दूसरे के प्रभाव के कारण आगे बढ़ती रहती है एवम् पूर्ण अस्तित्व में इस प्रकार की एकता पाई जाती है कि जो कुछ एक भाग में होता है वह शेष पर पड़ता है।''[3]

(iii) ओड़मः ''दूसरे दृष्टिकोण से समाज को मानव व्यवहार एवम् उसी के परिणामस्वरूप उत्पन्न सम्बन्धों की समस्याओं और व्यवस्थापन से चित्रित किया जा सकता है।''[4]

समाज सामाजिक सम्बन्धों का स्थायी एवम् व्यवस्थित रूप है, जो परस्पर समान उद्देश्यों, स्वतंत्रताओं, जीवन के कामों, व्यवस्थाओं और समान स्वामित्व के आधार पर निर्मित हुआ है।

समाज के अंतर्गत मनुष्य ने अपनी जैविक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु सामाजिक

व्यवस्था का आविष्कार किया है। मानव समाज समाज के साथ नित्य परिवर्तनशील, संश्लिष्ट, दुरूह और जटिल होता है। अपने उद्‌विकास के समय से लेकर यह मानव–समाज अनेकों छोटे बड़े समूहों, वर्गो, जातियों एवम् दलों आदि में विभक्त भी दिखाई पड़ता है।

'यदि हम विश्व की संस्कृति पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि कोई भी समाज वर्गहीन या स्तरहीन नहीं है।''[5]

समाज का वर्गीकरण भी अनेक तरह से होता है। जैसे पुरुष वर्ग और स्त्रीवर्ग जो समाज के सदस्यों की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। वर्ग शब्द है उसका स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक है। इस शब्द का प्रयोग दो दृष्टि से होता है। ''कुछ एक कक्षा के कुछ कार्य करते या लक्षण ग्राह्य मनुष्यों ने अथवा लक्षण ग्राह्य मनुष्यों ने दूसरी कक्षा के या दूसरा कार्य करते अथवा लक्षण ग्राह्य मनुष्यों को अलग करने के लिए और गाणितिक शास्त्र के वर्गीकरण की दूसरी पद्धति का अनुसरण करने के लिए।''[6]

सामाजिक स्तरीकरणः

प्लेटो ने समाज के सभी सदस्यों को योग्यता के आधार पर गार्डियन, ओक्सलरीस तथा श्रमिक तीन वर्गो में विभक्त करना उचित समझा था। अरस्तू ने भी जन्म, सामर्थ्य तथा सम्पत्ति के आधार पर मानव समाज में विद्यमान असंख्य असमानताओं पर लिखा था। भारतीय समाज में वैदिक सभ्यता के दौरान पेशा तथा वर्ण पर आधारित वर्गीकरण होता था। मध्ययुग के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री माकियवेल्ली ने मार्क्स के कई वर्ष पहले ही आर्थिक आधार पर सामाजिक वर्गीकरण के बारे में लिखा था। उनके अनुसार समाज धनी लोगों को 'वरेण्य वर्ग' (इलीट क्लास) तथा गरीब लोगों को 'जनता' (मासेस) वर्ग में विभक्त दिखाया है।''[7]

आधुनिक दृष्टिकोणः

सामाजिक स्तरीकरण सम्बन्धी अधिकांश आधुनिक अध्ययन इन दोनों आचार्यों के मार्क्स तथा वेबर के सिद्धांतों के समन्वय पर आधारित है। इन दोनों आचार्यों के अधिकांश निरीक्षण वस्तुनिष्ठ तत्व भी हैं, जिनके बारे में आधुनिक समाजशास्त्र सचेत हो गया है। आज कल यह माना जा चुका है कि हर व्यक्ति में सक्रिय वर्ग–चेतना या वर्ग अभिवीक्षण (क्लास सेन्टिमेन्ट) उसको एक निश्चित सामाजिक वर्ग में सदस्यता देने वाला प्रमुख तत्व है। आधुनिक समय के अनेक समाजशास्त्रीय सर्वेक्षणों से पता चलता है कि आजकल बहुत के लोग अपने को 'मध्यमवर्ग' के ही मानते हैं।''[8]

मैक आईवर तथा सी.एच. पैंज द्वारा दिया गया यह आंकड़ा इसका अच्छा उदाहरण है।

तालिका II अमेरिका के लोग अपनों को किस वर्ग में मानते हैं।

''जवाब देने वाले	संपन्न	उच्च वर्ग	निम्न मध्यम वर्ग	निम्न वर्ग
उच्च वर्ग	23.6%	7.9%	4.6%	4.5%
मध्यमवर्ग	74.7%	89.0%	89.4%	70.3%
निम्न वर्ग	0.3%	0.6	3.1%	19.1%
नहीं मालूम	1.4%	2.5%	2.9%	6.1%''[9]

भारत के लोगों का आर्थिक दृष्टिकोण से किया गया वर्गीखरण देखना हो तो हाल ही में किया गया The NCAER Survey को ले सकते हैं।

The NCAER Survey : (Betwen 1986-1994)

Indian consumer could be divided into five clases: the very rich of six million people or (one million household), the "consuming class' of some 150 million (half convertional estimate), the "climbers" (a lower middle class of 275 million), the "aspirants" (another 275 million who in America or Europe would be classified as poor and finally the detitute (210 million) of course the number have gone up by another 100 million."[10]

आर्थिक तत्व ही ऐसे हैं जो सामाजिक वर्ग के गठन में सहायक होते हैं। खास तौर पर 'पूंजीवादी समाज व्यवस्था' में आर्थिक तफावत ही सामाजिक वर्गो के गठबंधन में महत्वपूर्ण भाग निभाते हैं। इस संदर्भ में हम कार्ल–मार्क्स के आर्थिक निर्णायकवाद की बात करेंगे। मार्क्स इतिहास की भौतिक व्याख्या में विश्वास करते थे जिनके अनुसार हमारी सामाजिक रचना का आधार आर्थिक है। उनका मानना है कि व्यक्ति को जिस काम से आर्थिक लाभ होता है उसी काम को वह प्राधान्य देता है। आर्थिक स्थिति पर ही व्यक्ति का शिक्षण, स्वास्थ्य, खान–पान, रहन–सहन, चिन्तन, सामाजिक कार्य प्रवृत्ति आदि निर्भर करता है। आर्थिक स्थिति के मुताबिक ही अपने सामाजिक-सांस्कृतिक रूपों का निर्माण होता है। समाज रचना के आधार आर्थिक कारण ही होते हैं। आर्थिक कारणों से ही समाज में अमीर–गरीब, बुर्जुआ–सर्वहारा के दो वर्ग बन जाते हैं और फिर वर्ग युद्ध शुरु होता है। ''आज के समाज में भी हमारे जो आर्थिक सम्बन्ध होते हैं वे सामाजिक हो जाते हैं, क्योंकि आर्थिक कार्यक्रम कोई व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामाजिक आयाम से

सम्बन्धित होते हैं।''[12] आर्थिक दृष्टिकोण पर ही युरोपियन समाजों का वर्ग–विभाजन हुआ है। ''लोयिड वार्गर का प्रसिद्ध छः स्तरीय सामाजिक वर्ग विभाजन – उच्च, उच्च वर्ग, निम्न–उच्च वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग, निम्न मध्यमवर्ग, उच्च निम्न वर्ग तथा निम्न–निम्न वर्ग प्रायः इसी आधार का होता है।''[12]

प्रमुख आर्थिक वर्गः

''वर्तमान युग में अर्थ को जीवन का महत्वपूर्ण विधायक तत्व स्वीकार किया गया है। अर्थ ही समाज की शिराओं में प्रवाहित होने वाला वह रक्त है जो सम्पूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है। प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन अर्थ प्रक्रिया से प्रभावित रहा है। विकास का वह मूल आधार अर्थ ही है।''[13]

सामाजिक परिपार्श्व में विभिन्न विषमताओं का जन्मदाता भी अर्थ ही है। वर्तमान अर्थ–प्रधान समाज व्यवस्था में विभिन्न वर्णों के स्थान पर वर्गों का उदय हुआ। अब यह वर्ग–भावना आधुनिक समाज–व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता बन गई है। यही वर्ग भावना वर्ग–संघर्ष को जन्म देती है। विभिन्न सामाजिक संघर्षों के मूल कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ से संलग्न ही हैं। संघर्ष की प्रक्रिया में सबल और निर्बल दो रूप स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। अर्थात् शोषक और शोषित यह आधुनिक वर्ग–भावना का आदिम स्वरूप है। परम्परागत वर्ण–व्यवस्था के केन्द्र में अर्थ तत्व प्रमुख रहा है। ''वर्ग जनित मूल्यों के सृजन में भूमि, पूँजी एवम् श्रम तीन निर्माणकारी तत्व मुख्यतः स्वीकार किये जा सकते हैं। ये ही वर्ग व्यवस्था के आधार बिन्दु हैं। उच्च और निम्न या धनी या गरीब वर्गों के निर्धारण में इन्हीं तत्वों का योग रहता है।''[14] आर्थिक दृष्टिकोण से मानव समाज को प्रमुख तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है – उच्च वर्ग, मध्यमवर्ग और निम्न वर्ग। यहाँ पर हमारा जो प्रमुख विषय है वह है – मध्यमवर्ग। मध्यमवर्ग को भी प्रमुख रूप से तीन पेटा विभागों में विभाजित किया जा सकता है। उच्च मध्यमवर्ग, मध्य–मध्यम वर्ग, निम्न–मध्यमवर्ग।

कार्ल–मार्क्स ने समाज के विभिन्न वर्गों का नामकरण करते हुए प्रमुख रूप से तीन वर्गो की कल्पना की है। प्रथम वर्ग को मार्क्स ने बुर्जुआ या शोषक वर्ग की संज्ञा दी और द्वितीय वर्ग को 'प्रोलिटेरियट' या शोषित वर्ग कहा। शोषक और शोषित वर्ग के संघर्ष से ही कालान्तर में एक तीसरे वर्ग का जन्म हुआ जिसे मार्क्स ने 'मध्यमवर्ग' कहा। इस मध्यमवर्ग का इतिहास औद्योगिक क्रान्ति से जुड़ा हुआ है। जैसा कि एफ.सी. पाम महोदय लिखते हैं –''सन् 1812 तक मध्यमवर्ग की संज्ञा किसी समुदाय विशेष की नहीं था।

औद्योगिक विकास तथा नगरीय सभ्यता के बढ़ते स्वरूप ने पूँजीपति तथा श्रमिक के बीच एक नये वर्ग को उत्पन्न किया।''[15]

संसार के आर्थिक संगठन पर सभी क्रांतियों ने कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डाला है। 1786 की फ्रांस की राज्य क्रांति, इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति और 1917 की रूस की बोल्शेविक क्रांति का प्रभाव इस क्षेत्र में अतुलनीय रहा है। वर्तमान समाज पर अर्थ के अक्ष से दृष्टिपात किया जाय तो हमारे समक्ष समाज तीन वर्गों में विभाजित दृष्टिगोचर होता है – उच्चवर्ग, मध्यमवर्ग और निम्न वर्ग। आर्थिक स्थिति के आधार पर ही समाज का यह वर्ग विभाजन होता है। यशपाल ने भी 'मार्क्सवाद' नामक पुस्तक में लिखा है – ''विकसित पूँजीवाद के युग में मध्यम श्रेणी की स्थिति को समझने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि श्रेणियों का विभाजन और संगठन उनकी आर्थिक स्थिति से होता है।''

इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से मानव समाज को तीन वर्गों में मुख्यतः विभाजित किया जा सकता है – उच्चवर्ग, मध्यमवर्ग, निम्न वर्ग।

मध्यमवर्ग : परिभाषा एवम् स्वरूपः

मध्यमवर्ग की परिभाषा के अन्तर्गत विद्वानों ने उसकी सीमाएँ, विशेषताएँ, दुर्बलताएँ आदि का भी उल्लेख किया है। समाज के विभिन्न प्रमुख तीन वर्गो में से केवल मध्यमवर्ग ही ऐसा है कि जिसको परिमार्जित एवम् परिभाषित करना कठिन कार्य है।

बखारिन का कहना है– ''वर्ग मनोविज्ञान अथवा वर्ग सिद्धान्त की वर्ग–चेतना केवल क्षणिक रुचियों पर निर्भर नहीं करती वरन् ये स्थायी और सार्वभौमिक रुचियों के सिद्धान्तों पर आधारित होती है।''[16]

आक्सफोर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी में मध्यमवर्ग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– मध्यमवर्ग समाज के उच्च और निम्न श्रेणी के बीच का वर्ग है जिसमें व्यावसायिक, व्यापारिक अथवा क्रय–विक्रय करनेवाले सम्मिलित हैं।''[17]

हिन्दी साहित्य कोश में मध्यवर्ग के बारे में लिखा है – ''मध्यमवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पाया जाता क्योंकि उस समय जमींदार तथा किसान का सीधा सम्बन्ध था; किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बना दिया है, कि इस मध्यमवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरीपेशा, शिक्षक,क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं।

मध्यमवर्ग विशेषतः बुद्धि-प्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रांति के प्रायः समस्त विचारों का सर्जन मध्यमवर्ग में होता है।''[18]

* चेम्बर्स डिक्शनरी के अनुसार 'मध्यमवर्ग में वे सभी व्यक्ति आ जाते हैं जो अभिजात्य वर्ग और श्रमिक वर्ग के मध्य होते हैं।''[19]
* 'वेब्सटर्स न्यू ट्युनटियथ सेन्च्युरी डिक्शनरी' के अंतर्गत मध्यमवर्गीय व्यक्तियों की विवेचना इस प्रकार की हैः मध्यमवर्ग के अंतर्गत प्रोलेटेरियट, छोटे व्यवसायों के स्वामी, पेशेवर लोगों, बाबू लोग और सम्पन्न किसान सम्मिलित होते हैं।''[20]

  डॉ. बी.बी. मित्र ने भारतीय मध्यमवर्ग की परिभाषा देते हुए लिखा है – ''ब्रिटीश राज के परवर्ती काल में जो मध्यमवर्ग संवर्द्धित हुए वे उद्योग के विकास की देन न होकर माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की उपज थे। अतः मध्यमवर्ग का अधिकांश बुद्धिजीवी हुआ, सिविल कर्मचारी, अन्य वेतन भोगी कर्मचारी तथा विद्यानुरागी पेशे के सदस्य।''[21]

डॉ. पी.एम. थॉमस अपनी कृति 'भारतीय मध्यमवर्ग और सामाजिक उपन्यास' में लिखते हैं कि ''आम तौर पर हम उन सब लोगों को मध्यमवर्गीय मान सकते हैं जो 'मध्यमवर्गीय उपसभ्यता' के समर्थक हों और उस वर्ग विशेष की निजी मान्यताओं के पालन में प्रयत्नशील हों।''[22]

प्रतिमान (त्रैमासिक) में पाश्चात्य मध्यमवर्ग और भारतीय मध्यमवर्ग की परिस्थितियों को भिन्न-भिन्न माना गया है। पश्चिम में पूंजीवाद के क्रांतिकारी चरित्र के विकास के साथ मध्यमवर्ग का जन्म हुआ जबकि भारत में औपनिवेशिक तन्त्र के तहत यह वर्ग अस्तित्व में आया है और यही कारण है कि मध्यकाल का एक हिस्सा ब्रिटिश उपनिवेशवाद का मुसाहिब बनकर सामने आया।

मध्यमवर्ग में आत्मनिर्भरता और जीवन तथा परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की अद्‌भुत क्षमता होती है। नेतृत्व की क्षमता भी खूब होती है। डॉ. राधाकमल मुकर्जी मध्यमवर्ग को समाज का श्रेष्ठ अंग मानते हैं। जिसमें 'प्रेरक शक्ति, नेतृत्व भावना और भविष्य की चेतना विद्यमान रहती है। यह वर्ग समाज का महत्वपूर्ण वर्ग है और इस वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका संसार के लगभग सभी राष्ट्रों में गणनीय है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति जहाँ एक ओर भाग्यवादी निष्क्रियता, परम्परागत रुढ़िवादिता और धार्मिक अंध-विश्वास की ओर झुकता है वहीं दूसरी ओर समाजवादी प्रक्रिया को समाज के लिए आवश्यक मानकर एक वर्गहीन समाज का स्वप्न देखता है।

डॉ. मंजुलतासिंह मध्यमवर्ग के सम्बन्ध में अपने शोध–प्रबंध में लिखती हैं– ''मध्यमवर्ग का अस्तित्व अपने आप में समाज के श्रेष्ठीकरण की ओर संकेत करता है। इस वर्ग का यद्यपि प्रत्यक्ष अस्तित्व अपने आप इसके नामकरण की आवश्यकता बताता है, पर अपनी विशिष्टताओं के अभाव में इसका अस्तित्व दो वर्गों के बीच में माना जा सकता है।''[23]

डॉ. भूपेन्द्र के शब्दों में कहें तो ''मध्यमवर्ग मूलतः व्यवस्था की देन तथा निम्नवर्ग का 'बाय प्रोडक्ट' है। यह वर्ग श्रम की अपेक्षा व्यवस्था की मशीनरी का अंग बनना ज्यादा पसंद करता है।''[24]

मध्यमवर्गीय जीवन अनेक प्रकार की ग्रंथियों से ग्रसित हो गया, उनकी सबसे बड़ी विशेषतायेंथीं – झूठी सम्मान भावना, मानसिक अस्थिरता, संघर्ष से बचने की तथा समझौते की प्रवृत्ति और परमुखापेक्षता।

डॉ. रामदरश मिश्र ने अपनी किताब – 'हिंदी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा' में मध्यमवर्ग का निरूपण करते हुए लिखा है कि ''मध्यमवर्ग एक अजीब वर्ग है। वह अपनी झूठी शान, काल्पनिक गरिमा और आर्थिक खोखलेपन के बीच अजब हारा हुआ–सा, कुंठित–सा दीख पड़ता है। द्वंद्व का सबसे बड़ा शिकार वही होता । जीवन की विसंगतियों और काम कुंठाएँ वहीं अधिक दिखाई पड़ती हैं।''[25]

राजेन्द्र यादव ने मध्यमवर्ग की विवशता का वर्णन करते हुए कहा है कि –''बड़े–बड़े राष्ट्रीय या वैयक्तिक उद्योगों की छाया में करोड़ों लोगों का ऐसा वर्ग (मध्यमवर्ग) है, जो कहीं भी अपने को जुड़ा हुआ नहीं पाता। कोई शहर उनका अपना नहीं है, उनकी जड़ें न कहीं पीछे खेत–खलिहानों में हैं, न कहीं किसी संयुक्त परिवार में।''[26]

ब्रिटिश शासनकाल में नये प्रकार के मध्यमवर्ग का उदय भी भारत में हुआ। योरोपीय देशों में मध्यकाल के अन्त के समय जैसे मध्यमवर्ग ने सामाजिक परिवर्तन का नेतृत्व किया ठीक वैसा मध्यमवर्ग तो शायद भारत में नहीं बना परंतु जहाँ भी उद्योग, व्यवसाय, वकालत, डॉक्टरी, प्रशासन व शिक्षा आदि से सम्बन्धित मध्यमवर्ग के प्रभाव का बढ़ना सामाजिक दृष्टि से क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। इस वर्ग की मान्यताएँ व इसके हित परम्परागत सामाजिक संस्थाओं व आदर्शो के विपरीत पड़ते थे। ब्रिटिश शासन काल में धीरे–धीरे इस वर्ग की शक्ति व प्रतिष्ठा बढ़ती गई। प्रारंभ में ब्रिटिश शासकों ने भी इसे प्रश्रय दिया क्योंकि उनकी बहुत सी नीतियों को इस वर्ग का ही समर्थन मिल सकता था। किन्तु जब इस वर्ग ने ब्रिटिश शासन को अपने व देश के विकास में बाधक पाया, तो ब्रिटिश शासन का विरोध करने में इसने नेतृत्व ग्रहण किया। आधुनिक काल का भारतीय साहित्य कला, दर्शन आदि मुख्यतः इसी वर्ग के विचारों से अनुप्राणित है। परम्परागत सामन्तवर्गीय व धार्मिक विचारों

का इस काल में ह्रास हुआ है। कम से कम उनमें गहरा परिवर्तन तो अवश्य आया हैऔर यह परिवर्तन अधिकाधिक जनता के विभिन्न भागों में फैलता जा रहा है।

डॉ. नासिक अहमदखान मध्यमवर्ग के सम्बन्ध में लिखते हैं – ''उनके निर्वाह के ढंग के आधार पर उच्च और निम्न वर्गो से अलग किया जा सकता है। उनके पूर्वाग्रह, रुचियाँ तथा अरुचियाँ, शिष्टाचार, रीति–रिवाज और आचार–विचार जिन्हें स्पष्ट न होते हुए भी स्पष्ट किया जा सकता है।''[27]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मध्यमवर्ग समाज का महत्वपूर्ण अंग है जिसकी सीमा निर्धारित एवम् स्पष्ट नहीं होते हुए भी उच्चवर्ग एवम् निम्नवर्ग के बीच कड़ी समान है। यह वर्ग अपनी वैशिष्ट्य अथवा गुणों में इतना गुत्था हुआ मिलता है कि उसमें अन्य वर्गो के लक्षण एवम् गुण बखूबी पाया जाता है।

मध्यमवर्ग : वैशिष्ट्यः

मध्यमवर्ग एक ऐसा वर्ग माना गया है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी कारणों से दूसरे वर्गो से भिन्न है। मध्यमवर्ग में आत्म–निर्भरता और जीवन तथा परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की अद् भुत क्षमता होती है। इस वर्ग की मान्यताएँ व हित परम्परागत, सामाजिक संस्थाओं व आदर्शों के विपरीत पड़ते थे।

ब्रिटिशकाल में धीरे–धीरे इस वर्ग की शक्ति व प्रतिष्ठा बढ़ती गई। आरंभ में ब्रिटिश शासकों ने इसे प्रश्रय दिया क्योंकि उनकी बहुत–सी नीतियों को इस वर्ग का ही समर्थन मिल सकता था। किन्तु जब इस वर्ग ने ब्रिटिश शासन को अपने व देश के विकास में बाधक पाया तो ब्रिटिश शासन का विरोध करने में इसने नेतृत्व ग्रहण किया। आधुनिक काल का भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान आदि मुख्यतः इसी वर्ग के विचारों से अनुप्राणित है।

मध्यमवर्ग की अपनी निजी विशेषताओं के कारण अन्य वर्गो से अलग दृष्टिगोचर होता है। डॉ. राधाकृष्ण मुकर्जी ने 'मध्यमवर्ग को समाज का श्रेष्ठ अंग माना है। जिसमें प्रेरक शक्ति, नेतृत्व भावना और भविष्य की चेतना विद्यमान रहती है। यह वर्ग समाज का महत्वपूर्ण वर्ग है और इस वर्ग की महनीय भूमिका संसार के लगभग सभी राष्ट्रों में गणनीय है।''[28]

मध्यमवर्गीय व्यक्ति जहाँ एक और भाग्यवादी निष्क्रियता, परंपरागत रुढ़िवादिता और धार्मिक अंध–विश्वास की ओर झुकता है वहीं दूसरी ओर समाजवादी प्रक्रिया को समाज के लिए आवश्यक मानकर एक वर्गहीन समाज का स्वप्न देखता है।

भूपसिंह भूपेन्द्र अपनी आलोचना कृति 'मध्यमवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास' में मध्यमवर्ग के बारे में लिखा है कि ''मध्यमवर्ग समाज के अभिजात्य वर्ग तथा निर्धन वर्ग के बीच में आता है, जिसमें परिवेश को सीमित करना कठिन कार्य है। इस वर्ग का विस्तार स्पष्ट है और इसी कारण अनिश्चय के धरातल पर टिका यह वर्ग कभी उच्चवर्ग के समीप लगता है तो कभी निम्नवर्ग के निकट। वास्तविक स्थिति इस वर्ग की यह है कि वह 'त्रिशंकु' की तरह समाज के इस श्रेणीकरण के मंच पर लटका हुआ है। अनेक बातें हैं जिनके कारण यह वर्ग समाज के अन्य दोनों वर्गो से भिन्न प्रतीत होता है। कौटुंबिक तथा सामाजिक मर्यादा, वंश, रहन–सहन, जीविका, शिक्षा, आयु एवम् सम्पत्ति के आधारपर यह वर्ग दोनों वर्गो से पृथक् होता चला जाता है। धन की भूमिका महत्वपूर्ण है तो भी मात्र अर्थ ही वर्ग विभाजन को आधार मान लिया जाये वह भूल होगी। मानते हैं समाज में व्यक्ति का स्थान आर्थिक स्तर द्वारा निश्चित होता है तदपि के आधार पर मध्यमवर्ग की सीमा में सभी जाति और वर्ग के लोग सम्मिलित किये जा सकते हैं।''[29]

मध्यमवर्ग का बहुत भाग व्यक्तिवादी महत्वकांक्षाओं से युक्त,स्वार्थी तथा शोषक वर्ग का प्रतीक पूँजीपति वर्ग का विरोधी वर्ग है लेकिन यह भी तय है कि शोषण के विरोध में विचार और आन्दोलन पैदा करनेवाला भी स्वयं मध्यमवर्ग से ही आता है। अधिकांश क्रांतिकारी इसी वर्ग से आते हैं।

मध्यमवर्ग के अंतर्गत किस–किस की गणना करनी चाहिए, उससे पहले हमें डॉ. बलजीत सिंह का कथन उद्धृत करना चाहिए जिसमें मध्यमवर्ग की व्याख्या, उनकी परिस्थिति तथा उनके विभिन्न स्तरों की बात ठीक से स्पष्ट हो जायेगी – ''मध्यमवर्ग में केवल नियोजक ही नहीं अपितु कई कार्यकर्ता होते हैं जिनमें कुछ स्वतंत्र अथवा आत्मनिर्भर काम करने वाले, कुछ व्यापारी और ग्राहक, कुछ सम्पत्तिशाली और कुछ निर्धन होते हैं। इस वर्ग के लोगों की आय औसत दर्जे की होती है जिनकी कोई आय ही नहीं होती।''[30]

इनके अलावा डॉ. पी.एम. थॉमस का कहना है कि 'जिस समाज में पेशा या व्यवसाय ही अस्तित्व का मुख्य साधन होता है, वहाँ व्यवसायों के आधार पर ही वर्ग विभाजन होता है।'' उनके अनुसार आधुनिक समाज में वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारी, छोटे पैमाने के उद्योग–धन्धों के मालिक, वकील, साहित्यकार जैसे स्वतंत्र पेशों के लोग, अध्यापक, छोटे या मध्यम दर्जे के भू–स्वामी आदि आर्थिक दृष्टि से मध्यमवर्ग के सदस्य माने जाते हैं।

डॉ. बी.बी. मित्र ने 'दि इण्डियन मिडिल क्लासेज' में मध्यमवर्गीय पात्रों की विस्तृत सूची प्रस्तुत की हैः ''इस वर्ग में सौदागरों, एजेन्टों और आधुनिक व्यापारियों, एकमों के मालिक और संचालक सम्मिलित

हैं। इनमें शीर्ष स्थान के वे व्यक्ति सम्मिलित नहीं किये जा जाते जिनका सम्बन्ध थोक बिक्री, व्यापार, निर्माण अथवा वित्तीय मामलों से है। वेतन पाने वाले कार्यकर्ता जैसे मैनेजर, निरीक्षक, सुपरवाइजर तथा तकनीकी कर्मचारी तथा बैंक उद्योगों एवम् अन्य व्यापारिक संस्थाओं में बैंकिंग का कार्य करनेवाले लोग आते हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न संस्थाओं में उच्च वेतन पाने वाले अधिकारी, वाणिज्य के चेम्बरों और व्यापारों के एसोसिएशनों से लेकर राजनीतिक संगठनों, व्यापारिक संघों, दानशील, सांस्कृतिक और शैक्षणिक निकायों में कार्य करनेवाले लोग आते हैं। इनके अतिरिक्त उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश तथा सरकारी सचिवों को छोड़कर सचिवालयों के कर्मचारी भी इसी वर्ग में परिगणित होते हैं। उपर्युक्त सरकारी और गैर–सरकारी लोगों के अतिरिक्त मुख्य व्यवसायों के अवैतनिक कार्यकर्ता – जैसे वकील, डॉक्टर, प्रवक्ता और प्राध्यापक, लेखक, पत्रकार, संगीतज्ञ तथा अन्य कलाकार, धार्मिक उपदेशक और पुजारी भी इसी वर्ग के सदस्य होते हैं। इनके अतिरिक्त जमींदारी में लगे हुये वेतन पानेवाले कर्मचारी, विश्व विद्यालय अथवा इसी प्रकार के स्तर की संस्थाओं में पूरे समय कार्य करनेवाले वेतन प्राप्त विद्यार्थी, माध्यमिक स्कूलों के उच्च स्तर के कार्यकर्ता, अध्यापक और स्थानीय निकायों के अधिकारी तथा राजनीतिक कार्यकर्ता भी मध्यम वर्ग की विस्तृत सीमा में आते हैं।''[31]

मध्यमवर्ग इतना विस्तृत और विलक्षण है कि उसे सीमाबद्ध करना बड़ा कठिन कार्य है। आर्थिक समस्या के कारण मध्यमवर्ग को दूसरे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे कि दहेज समस्या, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, ऊँच–नीच का भेदभाव, बढ़ती हुई पूंजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणाम, नौकरी–पेशा महिलाओं की समस्याएँ, शहरीकरण, संयुक्त परिवार का विघटन इत्यादि।

''मध्यमवर्गीय व्यक्ति जहाँ एक ओर भाग्यवादी निष्क्रियता, परम्परागत रुढ़िवादिता और धार्मिक अंधविश्वासों की ओर झुकता है वहाँ दूसरी ओर समाजवादी प्रक्रिया को समाज के लिए आवश्यक मानकर एक वर्ग–हीन समाज का स्वप्न देखता है।''[32]

वर्तमान परिस्थितियों से अतृप्त रहने से मध्यमवर्ग हमेशा क्रांतिकारी भावना से ग्रसित एवम् नवीन परिवर्तनों का स्थापक रहता है। अर्थाभाव से ग्रसित होने से वह हमेशा अपनी अर्थोपार्जन में लगा रहता है, जिसके लिए वह स्वार्थी,लंपट, लालची, दगाबाज एवम् रिश्वतखोर भी बन सकता है।

मध्यमवर्ग की विचारसरणी को लिया जाय तो वह व्यक्तिवादी है। समाज के दो और अन्य वर्ग का प्रबल विरोधी है। वह शोषक अर्थात् पूँजीपति का विरोध करता है। शोषक वर्ग के भाग्यवाद विषयक एवम्

उनकी मान्यताओं का विरोध करता है। उच्च वर्ग से स्पर्धाभाव भी आर्थिक असमतुलन का कारण बनता है। पैसे के आर्थिक संघर्ष में मध्यमवर्ग ही बिक जाता है।

इसके विपरीत मध्यमवर्ग का बहुल भाग व्यक्तिवादी, महत्वकाक्षाओं से युक्त, स्वार्थी तथा शोषित वर्ग का विरोधी वर्ग है। लेकिन यह भी तय है कि शोषण के विरोध में विचार और आन्दोलन पैदा करनेवाला भी मध्यमवर्ग से ही आता है। अतः व्यवस्था का उससे घबराना और उसे हमेशा लोभ लालच के दाने डालते रहना सम्भवतः इसी बात का प्रमाण है।''[33]

सामाजिक और आर्थिक संघर्ष से ग्रसित मध्यमवर्ग की त्रस्तता और क्षुब्धता के सम्बन्ध में चण्डीप्रसाद जोशी लिखते हैंः ''अतः नैतिक मूल्यों एवम् जीवनगत आदर्शों के प्रति सबसे अधिक आस्थाहीन यही वर्ग था। बाह्य संघर्ष में अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए अवसरवादिता, उसका व्यावहारिक आदर्श बन गया तथा परिस्थितियाँ ही, विश्व की संचालक शक्ति है, इसे उसने दर्शन मान लिया।''[34]

सामाजिक–आर्थिक संघर्ष से ग्रसित मध्यमवर्ग राजनीतिक स्तर पर व्यक्ति चेतना का उद्घोष करने लगा है। अभावग्रस्त मध्यमवर्गीय जीवन की एक और विडम्बना उसकी रोमानी दृष्टि होती है। जो परिस्थिति की उपेक्षा करती हुई दूसरों को अपना बना लेने के लिए पागलपन की सीमा तक पहुँच जाती है।

मध्यमवर्गीय जीवन की एक और विडम्बना है उसका अत्यधिक संवेदनशील होना। अपनी शिक्षा और संवेदनशीलता के कारण ही यह वर्ग सबसे पहले किसी भी नई राजनैतिक चेतना के प्रति खिंचता है। गाँधीवाद, क्रांतिकारी आन्दोलन, साम्यवाद, समाजवाद सभी विचारधाराओं के प्रति मध्यवर्ग की सजगता दिखती है।

उच्च वर्ग और सभ्यताः

समाज में सौ प्रतिशत लोगों में से केवल पाँच प्रतिशत लोग ही इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं। जिसके पास अधिक ऐश–आराम के साधन, धन–दौलत, उद्योग–धन्धे, जमीन हैं। जो उच्च पदों–होद्दों पर आसीन है, जिनके पास निर्णय लेने की सत्ता है। अधिकांश उच्च वर्ग पैतृक संपत्ति के बल पर इस वर्ग में शामिल है। जिसके कारण उनको मान–सम्मान मिलता है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इस आधुनिक युग में अपने सामर्थ्य और प्रयत्न के फलस्वरूप इस वर्ग में समाविष्ट होते हैं। 'उच्चवर्गीय उपसभ्यता पर विरचित 'द थ्योरी ऑफ द लिशर क्लास' के लेखक 'वेबलन' ने नये–नये उच्च वर्ग सदस्यता प्राप्त करने वालों

में दर्शनीय प्रदर्शनप्रियता और विलासिता के शौक पर लिखा है। वे कहते हैं –''उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लक्ष्य से ही ऐसे नये संपन्न व्यक्ति प्रदर्शनी में लग जाते हैं।''

उच्च वर्ग के लोग प्रायः किसी पेशा या व्यवसाय में लग जाकर कायिक श्रम नहीं करते। वह निम्नवर्ग का शोषक है। इसीलिए इसे पूँजीवादी वर्ग भी कहा जाता है। पूँजी के बल पर वह अपनी औलाद को अच्छी शिक्षा–प्रशिक्षण देते हैं और अपनी अलग असभ्यता का पालन करना सिखाते हैं। वर्ग–वेरण्यता से सजग होने के कारण वह हमेशा निम्नवर्ग और मध्यवर्ग से अपनी दूरी बनाये रखता है। निम्नवर्ग के प्रति केवल चिंता का दिखावा करते हैं। निम्नवर्ग की सहायता करेक वह अपने ही वर्ग के लोगों के सामने अपना मोभा बढ़ाना चाहते हैं। निवास–स्थान, शिक्षा, संस्था, सामाजिक सम्बन्धों, मित्र मंडल, प्रोपर्टी में सतर्कता रखते हैं। वे अपनी सुख–सुविधाओं में कमी न हो इस वजह से समाज में आने वाले क्रांतिकारी और बुनियादी परिवर्तनों का खुलकर विरोध करते हैं। इनके पीछे उनके वैभवी जीवन गुजारने का स्वार्थ निहित होता है।

निम्नवर्गः

निम्न वर्ग उन लोगों का है जो अपने जीवन का निर्वाह करने के लिए शारीरिक श्रम पर आधारित होते हैं। इस गरीब वर्ग को दलित वर्ग, सर्वहारा वर्ग, पीड़ित वर्ग आदि नामों से भी जाना जाता है।

डॉ. पी.एम. थोमस ने अपने संशोधन ग्रंथ में लिखा है – ''निचली बौद्धिक क्षमता, ढीला सदाचार, भविष्य के प्रति बेपरवाही, संवेदनशीलता में कमी, आत्म–सम्मान तथा आत्म–निर्भरता का अभाव, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों से विरक्त, शिथिल पारिवारिक रिश्ता, हीनता ग्रंथि आदि सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलुओं से निम्नवर्ग की पहचान बहुत आसान है।''[35]

निम्न वर्ग को हमेशा उच्चवर्ग के द्वारा शोषित किया जाता है। निम्न वर्ग वास्तविकता के साथ सम्बन्ध रखता है। उसका स्वप्न दुनिया से कोई सरोकार नहीं होता।

मध्यमवर्गः ऐतिहासिक झाँकीः

नित्य परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत समय एवम् मानवीय माँग के अनुरूप नये–नये परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। पुराणकाल में जनसंख्या की कमी होने से सामाजिक संरचना सरल थी। लेकिन जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ी वैसे–वैसे सामाजिक संरचना क्लिष्ट एवम् जटिल होती गई।

मानव संस्कृति के लंबे इतिहास को आचार्यो ने तीन काल में विभाजित किया है – प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल। प्राचीनकाल और मध्यकाल के समय–अवधि निर्धारण में विद्वानों में मतभेद है किंतु आधुनिककाल के आरंभ के बारे में अक्सर मतैक्य है। यूरोप में 15वीं व 16वीं शताब्दियों में घटित 'नवजागरण' के समय से आधुनिक युग का आविर्भाव माना जाता है। इस समय तकनीकी व विज्ञान के क्षेत्रों में उस समय व्यापक विकास हुआ। जिसे कारण नवीन आविष्कार हुए। यातायात के साधनों में वृद्धि से अज्ञात व सुदूर भूखण्डों में संपर्क स्थापित हुआ। जिसके फलस्वरूप व्यापार में वृद्धि और आर्थिक प्रगति चरमसीमा तक पहुँची। नवजागरण के फलस्वरूप शिक्षा के प्रचार , ईसाई धर्म के प्रचार, भौतिकवाद के प्रचार में वृद्धि हुई। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप शिक्षित और अशिक्षित लोगों की माँग बड़ी मात्रा में बढ़ने लगी। खेती के क्षेत्र से असंख्य लोग कल कारखानों में नौकरी मिलने की आशा में शहरों में आ जाने से शहरों की सीमायें बढ़ने लगीं तथा नये–नये शहरों की स्थापना होने लगी। मुद्रणकला तथा शिक्षा के प्रचार से पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरु हुआ था। मध्ययुगों के सरल सामाजीकरण के स्थान पर नया सामाजिक स्तरीकरण और नये वर्ग उभर आये। मध्ययुगों की सामाजिक संरचना मुख्य रूप से कृषि पर आधारित भू–व्यवस्था पर निर्भर थी। उस समय समाज में मुख्य दो वर्ग ही होते थे –राजा–रईसों तथा धनी जमींदारों एवम् बड़े व्यापारियों का उच्च वर्ग और श्रमिकों व खेत मजदूरों का निर्धन निम्न वर्ग। राजकर्मचारियों, सैनिकों, छोटे–छोटे व्यापारी वर्ग, स्वतंत्र पेशे के व्यक्ति , शिक्षक, अध्यापक, वैद्य आदि का एक तीसरा वर्ग भी था। जिनके पास मध्यम सामाजिक सुख–सुविधा उपलब्ध होते थे लेकिन उनकी संख्या नगण्य थी और तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर कोई असर डालने में वे असमर्थ थे।

आधुनिक मशीनीकरण के युग में उत्पादन बढ़ने के साथ ही पूँजीपति वर्ग का विकास हो रहा था। जिसमें मिल–मालिक, बड़े–बड़े व्यापारी और स्वतंत्र व्यवसायी होते थे। दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग का शोषण अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। श्रमिकों की स्थिति दयनीय हो रही थी। पूँजीवादी अर्थ–व्यवस्था के परिणामस्वरूप वर्ग–भेद की खाई गहरी होती जा रही है। पूँजीपति और श्रमिक के बीच मात्र स्वार्थ या नकद लेन–देन के अतिरिक्त कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था कायम होने से वेतन पानेवाले आत्म–निर्भर श्रमिकों की संख्या बढ़ी। दुकानदारों, वकील, डॉक्टर, शिक्षक, अध्यापक आदि पेशेवर व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगी। वे सब प्रायः शहर में रहते थे। वे सब जब कुछ आम स्वार्थपूर्ति हेतु इकठ्ठा होते तब समाज में मध्यवर्ग का स्तरी करण प्रस्पष्ट होने लगा। वे उच्चवर्ग सामाजिक प्रतिष्ठा एवम् आर्थिक

दृष्टि से निचले स्तर में थे किंतु आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त होने से श्रमिक वर्ग से उपर थे। इस तरह औद्योगिकरण के युग में उच्चवर्ग और निम्न वर्ग के मध्य एक तीसरे वर्ग का भी उदय हुआ। यह मध्यमवर्ग निम्न और उच्च वर्ग के बीच की कड़ी है। 'मध्यमवर्ग'–मिडिल क्लास शब्द का प्रथम प्रयोग इंग्लैन्ड में 1812 में हुआ था। 1831 में 'स्पेक्टेटर' पत्रिका में बौमान नामक लेखक ने इस वर्ग को देश का धन और मस्तिष्क के रूप में चित्रित किया।''[36]

मध्यमवर्ग में आत्म–निर्भरता और जीवन तथा परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की अद्‌भुत क्षमता होती है। उनकी अपनी निजी विशेषताओं के कारण वह अन्य वर्गों से अलग दृष्टिगोचर होता है।

भारतीय मध्यमवर्ग का इतिहासः

भारतीय मध्यमवर्ग पर दृष्टिपात करने के लिए हमें इतिहास का सहारा लेना होगा। वैसे तो भारतीय इतिहास प्राचीन, मध्य और आधुनिक तीन विभागों में बाँटा जा सकता है। लेकिन हमें मध्यमवर्ग के बारे में जानना है जिसका उदय आधुनिक युग के नवजागरण के समय हुआ था। आधुनिक मध्यमवर्ग के उद्‌भव और विकास का दायित्व अंग्रेजी साम्राज्य पर है – ''जहाँ तक मध्यमवर्ग के विस्तार का प्रश्न है ब्रिटिश हकूमत के प्रारम्भिक काल में यदि प्रशासन दूसरी–तीसरी श्रेणी के कर्मचारियों की जरुरत ने मध्यमवर्ग को जन्म दिया तो प्रथम महायुद्ध के दौरान उद्योगों के विस्तार से इस वर्ग के आकार में वृद्धि हुई। आजादी के बाद हमारी सरकार को जनतांत्रिक ढाँचे को विस्तार देना था, समाज कल्याण की योजनाएँ शुरु करनी थीं, शिक्षा और प्रसार और औद्योगिक विकास की जरुरत थी, अतः मध्यमवर्ग का अभूतपूर्व विस्तार हुआ।''[37]

डॉ. बी.बी. मित्र भारतीय मध्यमवर्ग के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं – ''सन् 1905 से पूर्व का समय दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग में कम्पनी शासन के अन्तर्गत मध्यमवर्ग का उदय हुआ और दूसरे भाग में सम्पन्न और निम्न मध्यमवर्ग के परिवारों में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ।''[38] मध्यमवर्ग के विकास में अंग्रेजी शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए ए.आर.देसाई ने लिखा है – ''अंग्रेजों ने भारत में नवीन शिक्षा पद्धति का सूत्रपात किया। जिसके फलस्वरूप शिक्षित, मध्यम वर्ग का निर्माण हुआ। उस वर्ग में वकील, डॉक्टर, टेकनीशियन, प्रोफेसर, पत्रकार, राज्य–कर्मचारी, क्लर्क, विद्यार्थी और अन्य व्यक्ति सम्मिलित थे।''[39] इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा न केवल बुद्धिजीवियों के निर्माण में ही सहायक हुई वरन् मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों की संख्या में निरन्तर विकास का उत्तरदायित्व भी अंग्रेजी

शिक्षा और शासन का है। आज की अंग्रेजी शिक्षा का मध्यम वर्ग के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। अंग्रेजों के आगमन ने न केवल सांस्कृतिक या शैक्षणिक दृष्टि से ही भारत पर प्रभाव नहीं डाला, अपितु आर्थिक, राजनीतिक – सभी क्षेत्रों में प्रभावित किया। अंग्रेजों के समय में कृषि व्यवसाय नष्टता के कगार पर पहुँच चुका था। जिसके कारण गाँव से अधिक लोग नौकरी की आशा में शहर जाने लगे और इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के साथ एक नया वर्ग मध्यमवर्ग धीरे–धीरे विकसित होने लगा। शहरों में आकर नयी शिक्षा ग्रहण करके जड़ें दृढ़ होती गई। जैसे–जैसे बाबू वर्ग की संख्या बढ़ती गई, मध्यमवर्ग अपने पूर्ण रूप में विकसित होता चला गया। गाँव की बिगड़ती आर्थिक परिस्थितियों के कारण ग्रामीण जीवन का एक वर्ग शहर में आकर मजदूरों का जीवन व्यतीत करने लगा। इनमें से कुछ लोग शहरों में जाकर पल्टन के सिपाही, नौकर, पुलिसमैन, रसोइये, चपरासी, दुकानदार, ड्रायवर आदि बन गए। इस प्रकार उन्होंने अपना अलग विशिष्ट वर्ग समुदाय शहर में स्थापित कर दिया जिसको हम मध्य–मध्यमवर्ग के अंतर्गत स्थान दे सकते हैं। इस प्रकार शहरी मध्यमवर्ग में शिक्षित, अर्द्ध–शिक्षित, अशिक्षित लोगों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती गई। भारतीय मध्यमवर्ग के अन्तर्गत किसी एक वर्ग या जाति के लोग ही नहीं है, अपितु विभिन्न जाति एवं विविध समुदायों के लोग सम्मिलित हैं।

अन्य देशों की तुलना में भारतीय मध्यमवर्ग ने अपेक्षाकृत अधिक कठिनाइयों का सामना किया है और वर्तमान समय में भी कर रहा है।

भारतीय मध्यमवर्ग के विकास में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का पर्याप्त हाथ रहा है। भारत में जहाँ तक इस वर्ग के प्रसार का प्रश्न है उसे ब्रिटिश उपनिवेशवाद के जड़ीभूत होने के साथ देखा जा सकता है। ब्रिटिश हुकूमत को उस युग में दूसरी–तीसरी श्रेणी के कर्मचारियों की जरुरत थी। इसी जरुरत ने भारतीय मध्यमवर्ग को जन्म दिया। बीसवीं शती के आरम्भ के साथ उद्योगों का विस्तार इस वर्ग के आकार में वृद्धि का कारण बना। आजादी के बाद हमारी सरकार को जनतंत्र का ढाँचा विस्तृत करना था, समाज कल्याण की योजनाएँ शुरु करनी थीं, शिक्षा प्रसार और औद्योगिक विकास की जरुरत थी। फलस्वरूप मध्यमवर्ग का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। मध्यमवर्ग इतना व्यापक और विविध विशेषताओं से सभर होने से उसे सीमाबद्ध करना कठिन है।

सारांश के रूप में अगर हम देखें तो भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत भी फेरफार हुआ। प्राचीन मान्यताएँ, रुढ़ियाँ अपना दम तोड़ने लगीं और उसकी जगह नये विचारों, नये मूल्यों का आगमन

होने लगा था। मध्यमवर्ग की विकसित नई पीढ़ी को पुराने रीति–रिवाजों के प्रति अनास्था उत्पन्न हुई और विद्रोही प्रवृत्ति का आविष्कार हुआ। मध्यमवर्ग हमेशा असंतुष्ट रहता है जिसके कारण मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपना पूरा जीवन संघर्ष में बीताता है। वह दूसरों की आलोचना करना न्यायपूर्ण मानता है। वर्तमान मध्यमवर्ग का व्यक्ति आर्थिक परिस्थितियों के कारण अनेक उपेक्षाएँ, लांछन, उपहास सहन करने पर भी अपने नैतिक आदर्शो के बल पर पूँजीपतियों के चक्रव्यूह से जूझता रहता है। अपनी विषम परिस्थितियों के कारण मध्यमवर्ग राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं से भी जूझता रहता है। मध्यमवर्ग की अपनी निजी दुर्बलताएँ होती हैं जिसमें सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह कुल मर्यादा को निभाने के लिए अनेक प्रदर्शन करता है। यथाशक्ति से ज्यादा प्रदर्शन करने का प्रयत्न करता है जिसके कारण वह खोखला बन गया है। घर में धन न होने पर वह कर्ज लेकर अपनी शान–शौकत में बढ़ोतरी करता है जिससे वह आर्थिक दृष्टि से कंगाल होता जाता है। उनकी दूसरी सबसे बड़ी दुर्बलता उनकी स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति है। मध्यमवर्ग कल्पना की उड़ान और आत्मकेन्द्रिता के परिणामस्वरूप नवीन का आग्रही हो गया है। नवीन चेतना से भरपूर मध्यमवर्ग पुरुष की प्रगति के साथ–साथ नारी की प्रगति के लिए भी प्रगतिशील एवं संघर्षपूर्ण बना है। नवीन नारी वर्ग भी पाश्चात्य नारी वर्ग के संपर्क में आने से ज्यादा स्वतंत्रतापूर्ण जीवन एवम् अधिकारों की समानता के बल पर जोर दे रही हैं। जिसके कारण रुढ़ियों से पीड़ित एवम् शोषित जीवन जीनेवाली नारी ने भी क्रांतिकारी रूप धारण किया है।

मध्यमवर्ग इतना व्यापक और विविध विशेषता सम्मत है कि इसकी कोटियाँ बनाना सहज नहीं। आर्थिक दुर्व्यवस्था से आक्रांत मध्यमवर्ग की समस्याएँ अनवरत विस्तार पा रही हैं। दूसरी तरफ समाज सुधार के आदर्श और शोषण के खिलाफ चिंतन–चेतना और विद्रोह जगाने की चिंगारी भी इसी वर्ग से निकलती है। भारतीय मध्यमवर्ग अन्य देशों की तुलना में अधिक मुश्किलों से रूबरू हुआ है। हालात से मजबूर यह समाज अपनी संस्कारगत संकीर्णताओं, कमजोरियों और विडम्बनाओं का शिकार है। परिणामस्वरूप शनैः शनैः मध्यमवर्ग के व्यक्तियों में परम्पराभंजन और विद्रोह के कदम तेजतर हो रहे हैं।

हिन्दी और गुजराती के आरंभिक उपन्यासों में मध्यमवर्गः

सामाजिक उपन्यासः

उपन्यास मुख्यतया समाज से सम्बन्धित होता है, इसलिए इसका रूप सामाजिक होता है। मनुष्य के सामाजिक जीवन या सामाजिक सम्बन्धों को प्रस्तुत करना ही उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्ति है। ''सामाजिक उपन्यास जीवन की व्यक्त, बाह्य गतिविधियों को प्रस्तुत करते हैं। उसके पात्र समाज से अपना सामंजस्य स्थापित करने में रत रहते हैं। कभी वे सामाजिक गति के अनुसार ढल जाते हैं और कभी उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए उसके दिशा परिवर्तन में जूटते हैं।''[40]

सामाजिक उपन्यासों में समाज के जीवन की समस्याओं तथा विचारधाराओं की अभिव्यक्ति की जाती है। सामाजिक उपन्यास समाज के विस्तृत क्षेत्र को अपने अन्तर्गत समाविष्ट रखता है। ''उपन्यास मुख्यतया समाज से सम्बन्धित होता है इसलिए इसका रूप सामाजिक होता है। मानव की विषमताओं, संघर्षों तथा मनुष्य के अन्तर्बाह्य द्वन्द्वों का सूक्ष्म चित्रण उपन्यासों में ही संभव है।''[41]

सामाजिक उपन्यास जीवन की आशा–निराशाजनक प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण करता है। महावीर लोढा के शब्दों में ''सामाजिक उपन्यास का उद्देश्य जीवन की सामाजिक दृष्टि से देखना है, जीवन का विवेचन–विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करना है। व्यष्टि सत्य को समष्टि सत्य में समा देना है और जीवन–मूल्यों की स्थापना समाज के माध्यम से करना है।''[42] डॉ. राजनाथ शर्मा अपनी पुस्तक 'साहित्यिक निबंध' में सामाजिक उपन्यास के बारे में लिखते हैं – ''इनमें सामायिक युग के विचार, आदर्श और समस्याएँ चित्रित रहती हैं। सामाजिक समस्याओं का चित्रण इनका मुख्य उद्देश्य होता है। इस पर राजनीतिक सामाजिक धारणाओं और मतों का विशेष प्रभाव रहता है। इनमें लेखक अपने समय के आदर्शो के रूप में पात्रों का चित्रण करता है। आज के प्रगतिवादी लेखकों के अधिकांश उपन्यास तथा प्रेमचन्द के कुछ उपन्यास इसी वर्ग के हैं।''[43] सामाजिक उपन्यास में मानवतावादी भावना के दर्शन होते हैं। गाँधीवादी, मार्क्सवादी तथा राजनीतिक विचारधाराएँ इसमें सम्मिलित होती हैं, परन्तु इनकी जीवनदर्शनपरक विशेषताएँ सामाजिक उपन्यास में ज्यादा देखने को मिलती है।

सामाजिक उपन्यास समाज के संगठन के अतिरिक्त सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक समस्याओं की पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया का चित्रण करता है। सामाजिक उपन्यासों में हमें देखने को मिलता है कि आर्थिक साधनों के बदलने से समाज के सम्बन्ध बदलते हैं और समाज के सम्बन्धों के बदलने से समाज

की सभ्यता, संस्कृति, कला और साहित्य में नवीनता आती है। सामाजिक उपन्यास मध्यमवर्गीय समाज, विभिन्न क्षेत्रों, स्त्री–पुरुष के रति सम्बन्धों, परिवार, जाति, सम्प्रदाय, वर्ग, राष्ट्र, अर्थ–दशा, रीति, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण करते हुए, उनके लक्ष्य तथा उनकी समस्याओं का निरुपण करता है।

सामाजिक उपन्यासों में मध्यमवर्गीय व्यक्ति की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति को ध्यान में रखता है। इसमें मध्यवर्गीय व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रतिष्ठित करने का प्रयास होता है। डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने ठीक ही कहा है किः ''इसलिए भारत के बुद्धिजीवी वर्ग के सामने आज मूल प्रश्न जीवन के अस्तित्व–बोध और उसकी सार्थकता का है, व्यक्ति की सत्ता और गरिमा को फिर से स्थापित करने का है, व्यक्ति की नियति पहचानने का है। ये प्रश्न सभी देशों में है।''[44]

साहित्य उस युग का दर्पण है जिस समय वह लिखा जाता है। ''प्रत्येक युग का जीवन्त साहित्य अपने युग के सामाजिक सम्बन्धों और जन–विश्वासों को व्यक्त करता है। वह युग की नवीन सामाजिक जागृति और उसके अनेक पहलुओं को चित्रित करता है।''[45]

इस प्रकार सामाजिक उपन्यास में समाज से सम्बन्धित सारी बातें निर्देशित होती हैं क्योंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। व्यक्तिने अपनी रति सम्बन्धी एवम् पैतृक मूलवृत्तियों के कारण अपना अकेलापन त्यागकर पारिवारिक जीवन अपनाया है। उसेक उपरान्त उसकी सामाजिक भावना उत्तरोत्तर विकसित होती रही है। अतः समाज, सोद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील संगठन है। समाज अपने सदस्यों को बाह्य घातक तत्वों द्वारा नष्ट होने से बचाता है। रक्षा कर उनके व्यक्तित्व का विकास करता है और कुछ जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उन्हें पाने के लिए प्रयत्नशील होता है।

इ.स. 1960 के पहले के सामाजिक हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्गः

प्रेमचंद को उपन्यास का सम्राट कहा जाता था। प्रेमचंद को ही आधार बनाकर हिन्दी उपन्यास के लंबे इतिहास को निम्नलिखित चार खण्डों में विभक्त किया जाता है।

(i)	पूर्व–प्रेमचंद युग	(ई.स. 1800 - ई. 1915)
(ii)	प्रेमचंद युग	(ई.स. 1915 - ई. 1936)
(iii)	प्रेमचन्दोत्तर युग	(ई.स. 1936 - ई. 1947)
(iv)	स्वातंत्र्योत्तर युग	(ई.स. 1947 से आगे)

समाज में होने वाले परिवर्तन का साहित्य पर प्रभाव पड़ता है और साहित्य भी समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। मानव की परिस्थितियाँ एवं उसकी मनोवृत्तियों का संघर्ष मात्र दिखाकर ही आज के साहित्यकार का उत्तरदायित्व पूर्ण नहीं होता। अपितु निरंतर बदलते हुए बाहरी और भीतरी परिवेश से प्राप्त अनुभवों के फलस्वरूप जो परिवर्तन उत्पन्न होते जाते हैं, उन्हें भी साहित्यकार को चित्रित करना पड़ता है।

प्रमुख इतिहासकार और समाज विज्ञान मर्मज्ञ आर.सी. मजूमदार इस सम्बन्ध में लिखते हैं : ''समाज में दो प्रकार की विचारधाराओं को व्याप्त करने वाले दो वर्ग बन गए थे,एक जो भारतीय प्राचीन वर्ण–व्यवस्था, जाति–व्यवस्था तथा सामाजिक बन्धनों को आवश्यक मानता था और दूसरा जो तन से भारतीय और मन से अंग्रेज था। इन दोनों विचारधाराओं के मध्य तीसरा वर्ग भी था जिसमें सुधारवादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं और जो मध्यमवर्ग को अपनाकर आगे बढ़ रहा था।''[46]

साहित्य अपने मूल स्वरूप में मानव जीवन और समाज की सामूहिक समस्याओं, रूचियों और प्रवृत्तियों का ही परिचायक है। प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास में बदलते हुए भारतीय मध्यमवर्गीय समाज के विभिन्न रूपों एवम् मानवीय मूल्यों का चित्रण अंकित किया गया है। विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना के कारण मध्यवर्ग जनता की बदलती धार्मिक आस्था, नैतिक मूल्य, दशा आदि का प्रभाव देखने को मिलता है। मध्यमवर्ग की सामाजिक समस्याओं की जितनी खुलकर अभिव्यक्ति उपन्यास साहित्य में सम्भव हुई है, वह अतुलनीय है।

समाज के सशक्त और एवं जागरुक मध्यमवर्ग ने जो प्रभूत भूमिका इस विधा के पात्रों में दिखाई है वह श्लाधनीय है। नवीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय मध्यमवर्गीय समाज ने परम्परागत नैतिक मान्यताओं को तिलांजली देकर नवीन नैतिक प्रतिमानों की ओर अभिरूचि प्रदर्शित की है। स्वतंत्रता पूर्व समाज में स्थापित अस्पृश्यता का नैतिक मूल्य ढूँढा है। इसके अतिरिक्त विवाह को वैधानिक मान्यता मिलने से सामन्तवादी, बहु–विवाह की परम्परा का भी भंजन हुआ है। विधवा–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह के मौलिक अधिकारों ने व्यक्ति और समाज के मानसिक जगत में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किये हैं।

प्रेमचन्द पूर्व सामाजिक जीवन को दूर तक प्रभावित करने वाले महापुरुषों में राजा राम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परम हंस, स्वामी विवेकानंद, महादेव गोविन्द रानाडे तथा महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। इस युग की उल्लेखनीय सामाजिक संस्थाएँ निम्नलिखित हैं –आर्य समाज, ब्रह्म समाज,

भारतीय दलित संघ, थियोसोफिकल सोसायटी, हरिजन सेवक संघ, रामकृष्ण मिशन। इन संस्थाओं का सामाजिक क्रांति में कितना महत्वपूर्ण योगदान रहा यह किसी से अनभिज्ञ नहीं है। ये सुधार–आन्दोलन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में पुनर्जागरण और चेतना प्रसार का कार्यक्रम लेकर उपस्थित हुए।

हिन्दी के प्रथम उपन्यास 'परीक्षागुरु' में उभरते हुए मध्यवर्ग की उपयोगितावादी दृष्टि तथा नैतिकता का परिचय मिलता है। उस युग के प्रायः सभी लेखक उपयोगितावादी थे। डॉ. मंजुलतासिंह का कथन है कि – ''हिन्दी उपन्यासकार अपने युगीन मध्यम वर्ग की समस्याओं को प्रारम्भ से ही अंकित करते आ रहे हैं। मध्यम वर्ग के विकास में किन–किन परिस्थितियों का योग रहा है और मध्यवर्ग ने उनके माध्यम से किन–किन समस्याओं को सुलझाने का सतत प्रयत्न किया, इसे उपन्यासकारों ने विस्तार से चित्रित किया है। पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी से लेकर धर्मवीर भारती तक के उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी उपन्यास प्रारम्भ से आज तक परिवर्तित परिस्थितियों और संघर्षपूर्ण समस्याओं की एक सशक्त अभिव्यक्ति रहा है।''[47]

बीना श्रीवास्तव का भी कहना है कि ''वस्तुतः हिन्दी उपन्यास का जन्म ही मध्यमवर्गीय चेतना के क्रोड से हुआ है और उसी के भीतर से अपना मार्ग बनाता हुआ वह उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर होता गया।''[2]

हिन्दी उपन्यास भारतीय मध्यमवर्गीय समाज के विभिन्न भावस्तरों और वैचारिक धरातलों को समाहित किए हुए है। युग के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश ने हमारे समाज के मध्यम वर्ग को खूब प्रभावित किया और उससे उत्पन्न अनेक समस्याओं का उपन्यासकारों ने मध्यमवर्ग के अन्तर्गत अध्ययन करने के प्रयास किये। निश्चय ही ये प्रयत्न उपन्यासकार की युग–चेतना, जीवन–परिस्थितियाँ, मानसिक संस्कार और परम्पराओं से प्रभावित होते हैं।

पूर्व प्रेमचन्द युग के प्रमुख उपन्यासकारों के अंतर्गत हम पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी, भारतेन्दु हरिशचंद्र, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपाल गहमरी, मेहता लज्जाराम, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔंध', ब्रजनन्दन सहाय, चुन्नीलाल खत्री, मन्नन द्विवेदी, गजपुरी, नाथुराम प्रेमी, राधाचरण गोस्वामी, रत्नचन्द्र प्लीडर, देवीप्रसाद शर्मा, राधाकृष्ण दास, चन्द्रशेखर पाठक, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, पं. मणिशंकर शर्मा को ले सकते हैं जिनके उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समाज की समस्याओं एवं मध्यवर्ग का यथाकथित चित्रण देखने को मिलता है। हिन्दी के उपन्यास लेखन की शुरुआत से आज तक मध्यमवर्ग की सामाजिक सच्चाइयों को केन्द्र स्थान में रखा गया है।

प्रेमचन्द पूर्ववर्ती उपन्यासों में 'भाग्यवती' हिन्दी का प्रथम उपन्यास है जिसके अंतर्गत मध्यमवर्ग की समस्याओं का खुलकर निरूपण किया गया है। भाग्यवती इस उपन्यास की आत्म–विश्वास से युक्त नायिका है। समकालीन मध्यमवर्ग समाज में देखने को मिलती पर्दाप्रथा, अशिक्षा, अदूरदर्शिता आदि जो वृत्तियाँ हैं, वह भाग्यवती में देखने को नहीं मिलतीं। एक और भाग्यवती उदात्त जीवन के लिए प्रयत्नशील रहती है और दूसरी ओर भाग्य द्वारा रचित विडम्बनाएँ उसे हताश करती हैं। नारी जीवन की विवशताएँ भी उसे निर्बल बनाती हैं। परंतु भाग्यवती किसी भी परिस्थिति में हताश नहीं होती। वह आदर्श और यथार्थ से समन्वित नायिका के रूप में पाठकों के सामने आती है। फुल्लौरी जी का यह उपन्यास मध्मयवर्ग के चित्रण की दृष्टि से देखें तो किसी एक पक्ष का ही प्रतिफलन नहीं हुआ अपितु वर्ग की सभी सम्भावित समस्याओं की सफल अभिव्यक्ति हुई है। नारी–जागृति इस उपन्यास की प्रमुख समस्या है। सामाजिक कुरीति, प्रदर्शन प्रियता, अर्थलोलुपता, संयुक्त परिवार जैसी अन्य मध्यमवर्गीय समस्याओं को मध्यमवर्गीय पात्रों के माध्यम से उठाया गया है। इस संदर्भ में बीना श्रीवास्तव का कथन है–''हिन्दी के प्रथम उपन्यास की रचना जिस काल में हुई, उस समय मध्यमवर्गीय चेतना अपना विस्तार कर रही थी। जन–जीवन के साथ ही साथ साहित्य भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। इस युग के उपन्यासकार भी मध्यमवर्गीय प्राणी थे। अतः उन्होंने अपने औपन्यासिक पात्रों का चुनाव जनजीवन से करके साहित्य के क्षेत्र में एक अनोखा आदर्श प्रस्तुत किया। यह प्रयास मध्यमवर्गीय चेतना के फलस्वरूप ही संभव हुआ।''[49]

'भाग्यवती' के अंतर्गत फुल्लौरीजी ने नारी शिक्षा, नारी–जागृति, नारी चेतना, नारी जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं, नारी पर किए जा रहे अत्याचारों का उल्लेख करते हुए इस उपन्यास में तद्‌युगीन मध्यवर्गीय समाज में संचेतना का सूत्रपात किया।

तत्कालीन विकासमान मध्यमवर्ग की समस्याओं को हूबहू चित्रित करनेवाला प्रारंभिक उपन्यास लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' है। 'परीक्षागुरु' के मध्यमवर्गीय पात्रों के अंतर्गत मदनमोहन, शम्भूदयाल, बैधनाथ, ब्रजकिशोर, बिहारीलाल, चुन्नीलाल आदि को ले सकते हैं। इनके माध्यम से मध्यवर्ग की सामाजिक स्थिति का निरुपण किया है। मध्यमवर्ग की परम्पराओं, कुरीतियों, आर्थिक वैषम्य, चेतना, संचार, समाज में विद्यमान शोषण तथा आदर्शों के संघर्ष की कथा भी यह उपन्यास अपने में संजोये हैं। ''ब्रजकिशोर उस प्रगतिशील वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो रुढ़िग्रस्त समाज के अमानवीय कृत्यों एवं अंध विश्वासों को हटाकर सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन तो करना चाहता है, लेकिन पश्चिमी सभ्यता के आधार पर नहीं, भारतीय आदर्शों की पृष्ठभूमि पर।''[50]

इसके अलावा अगर 'सामाजिक दृष्टि से 'परीक्षागुरु' में अंग्रेजों की चाटुकारिता, शराब के दोष, बेरोजगारी, अमीर और गरीब की आर्थिक विषमता, व्यापारियों की चोरबाजारी, अदालत की वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालने के साथ–साथ सब्ज–बाग दिखाकर लूटनेवाले ठगों का पर्दाफाश किया गया है।''[51] परीक्षागुरु के अंतर्गत खुशामद की प्रवृत्ति, अकर्मण्यता, नारी की उपेक्षा, चरित्र पतन, प्रदर्शनवादिता, कुसंगति और विदेशीपन की नकल आदि जैसी तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का भी विस्तार से चित्रण किया गया है। इस प्रकार मध्यमवर्ग की अनेक युगीन दशाओं का विस्तार से चित्रण 'परीक्षागुरु' में मिलता है।

भारतेन्दु हरिशचन्द्र की रचना 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' में मध्यमवर्ग सामाजिक जीवन की प्रदर्शनप्रियता और चापलूसी की सटीक अभिव्यक्ति मिलती है। इसके वातावरण में हमें मध्यमवर्ग की झलक देखने को मिलती है । भारतेन्दु युग के विशिष्ट लेखकों में इनका स्थान है। उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में दो कृतियाँ प्रस्तुत की जिनके शीर्षक 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सो अजान एक सुजान' है। यह दोनों उपन्यास समाजवादी दृष्टिकोण के परिचायक हैं। 'नूतन ब्रह्मचारी' में विनायक राव के आदर्श एवम् सुसंस्कारित पात्र के द्वारा मध्यमवर्गीय परिवार का आलेखन किया है। इस उपन्यास का उद्देश्य बालक को अच्छी शिक्षा प्रदान कर देश को उन्नति के शिखर तक पहुँचाना है। इसका निर्माण बालकों के चरित्र का निर्माण करने के लिये किया गया था। इस उपन्यास के माध्यम से समाज में सद्व्यवहार की शिक्षा एवम् अतिथि सेवा का मूल्य समझाकर शिक्षाप्रद वातावरण को खड़ा करना था।

''उपन्यास के विकास में किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान विशेष है।''[52] उनके महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'प्रणयिनी परिणय', 'तरुण तपस्विनी', 'त्रिवेणी या सौभाग्यवती', 'पुनर्जन्म', या 'सौतियाडाह', 'माधवी–माधेव', कुसुम–कुमारी' या 'स्वर्गीय कुसुम', 'चपला' या 'नव्य समाज', 'अंगुली का नगीना', और 'लीलावती' को ले सकते हैं। जिनमें मध्यमवर्ग का मार्मिक चित्र उभरता है। ''उन्होंने विविध सामाजिक कथाओं के आधार पर अनेक सामाजिक समस्याओं के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इनमें से अधिकांश का संबंध समकालीन समाज से ही है। स्त्री शिक्षा आदि पर भी उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं।''[53]

समाज में उन्होंने नारी का स्थान महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने नारी के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का आंकलन अपने उपन्यासों में किया है। जैसे नारी के वैवाहिक, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने मध्यमवर्ग की नारी की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया है। 'तरुण तपस्विनी' में बहु–विवाह प्रथा, स्त्री शिक्षा, नारी स्वतंत्रता आदि पर भी उन्होंने विविध

स्थलों पर विचार किया है। 'तरुण तपस्विनी' नामक उपन्यास में ही सूज्जनसिंह की पत्नी सुशीला उसे सुन्दरी से विवाह कर लेने के लिए अनुरोध करती है। नारी समस्या के अतिरिक्त मध्यमवर्ग की आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं को भी गोस्वामीजी ने चित्रित किया है। गोस्वामीजी का दृष्टिकोण अत्यधिक परम्परावादी, प्रतिक्रियावादी और रुढ़िवादी था। इस रचनाकार के उपन्यासों के पात्रों के सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है– ''किशोरीलाल गोस्वामी के पात्र और चरित्र मध्यमवर्गीय समाज के प्रतिनिधि हैं।''[54]

''गोस्वामीजी के विचार से नारी जीवन का पुनरुद्धार सामाजिक पुनरुद्धार के लिए आवश्यक है।''[55] इसीलिए उन्होंने नारी जीवन की अनेक समस्याओं पर अपने निश्चित मन्तव्य प्रस्तुत किये हैं। 'माधवी माधव वा मदनमोहिनी' उपनयास के अन्तर्गत गोस्वामी जी ने लिखा है कि – ''मेरी तो यह राय है कि लड़कियाँ कभी भी घर के बाहर अर्थात् पाठशाला में पढ़ने के लिए न भेजी जाएँ और उन्हें घर पर ही हिन्दी और संस्कृत तथा गृहकार्य की विधिवत शिक्षा दी जाए। यद्यपि मेरी इस राय पर स्त्री शिक्षा के घोर पक्षपाती अवश्य रुष्ट होंगे, परंतु जो मर्म पाठक स्त्री शिक्षा की अयोग्यता स्त्री शिक्षा ही के कारण एक बंगालिन एक पंजाबी की पत्नी बनती है, एक राजरानी एक शुद्ध किए हुए हिन्दू अंग्रेज भार्या बनती है, एक गोरी नारी एक हिन्दू नरेश की पटरानी बनती है और ब्राह्मणी एक शूद्र की जोरू बनती है, तो यह कहना पड़ेगा कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा किंवा अयोग्य शिक्षा कभी न देना चाहिए और उन्हें पाठशाला या स्कूल कभी न भेजना चाहिए। पश्चिमी वैज्ञानिकों का यह मत है कि यदि स्त्री को पुरुष के समान बहुत पढ़ाया जायेगा तो वे स्त्रीधर्म से च्युत हो जायेंगी। फिर या तो उन्हें संतान न होगी और यदि होगी भी तो वह जिएगी कदापि नहीं।''[56] उनके ये विचार परंपरागत रुढ़ियों को दर्शाते हैं।

इस काल में उपन्यास के विकास परम्परा में गोपालराम गहमरी को भी ले सकते हैं। उन्होंने अधिकतर जासूसी उपन्यासों या घटना प्रधान उपन्यासों का निर्माण किया है। इसी के साथ–साथ गहमरी जी ने कुछ श्रेष्ठ मध्यमवर्ग से सम्बन्धित पारिवारिक एवं गृहस्थ जीवन से संलग्न उपन्यास लिखे हैं। उनके उपन्यासों में 'डबल बीबी', 'देवरानी–जेठानी', 'दो बहिनें' लिए जाते हैं।

'सामाजिक जीवन का चित्रण करते समय गहमरीजी ने अधिकांशः पारिवारिक और गृहस्थ जीवन की समस्या पर प्रकाश डाला है।''[53] 'बड़ा भाई' शीर्षक सामाजिक उपन्यास में मध्यवर्ग के गार्हस्थ जीवन का चित्रण किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि एक परिवार में सौतेली माँ किस प्रकार की कलेशभरी

परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है और उसकी क्या कुप्रभाव होते हैं। 'देवरानी जिठानी' शीर्षक एक सामाजिक उपन्यास की रचना भी उन्होंने की है। यह उपन्यास भी पारिवारिक जीवन की घटनाओं से ही सम्बन्धित है। इस उपन्यास में लेखक ने मध्यमवर्ग के संयुक्त परिवार की समस्या पर विचार प्रगट किए हैं। संयुक्त परिवार में बहुधा छोटे–मोटे कारणों से विविध सदस्यों में पारिवारिक विवाद हो जाया करता है। 'डबल बीबी' यह उपन्यास मध्यमवर्गीय गार्हस्थ जीवन से सम्बन्ध रखता है। इसमें दिखाया गया है कि कथा का नायक संतान प्राप्ति की इच्छा से दूसरा विवाह करता है। इस विवाह के पश्चात् किस प्रकार की विडम्बनात्मक परिस्थितियाँ सामने आती हैं और उसकी पहली पत्नी को कितनी मार्मिक यंत्रणाएँ सहन करनी पड़ती हैं। ''डबल बीबी उपन्यास में नायक के अतिरिक्त चार पात्र मुख्य हैं और चारों मध्यवित्त समाज की हिन्दू महिलाएँ हैं।''[58] गहमरी जी के सामाजिक उपन्यास यथार्थवादी दृष्टि के परिचायक हैं।

प्रेमचन्द पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम भी लिया जाता है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' उनके बहुचर्चित उपन्यास हैं। इस उपन्यास में मध्यमवर्ग की प्रेम की समस्या और स्त्री समस्या पर मुख्य तौर पर विचार किया गया है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' में आदर्शवादी दृष्टिकोण की ओर झुकाव होने के कारण इसमें समाज–सुधार की भावना मुख्य है। देवबाला के रूप में लेखक ने एक ऐसी पात्री सृष्टि की है जो परम्परागत नारी जीवन के आदर्शो को पालन करती है। देवबाला जो सदैव सरल और नैसर्गिक भावनाओं में ही खोयी रहती है, जीवन की कठोर विडम्बनाओं को झेलती है। सामान्य चित्रणों के माध्यम से भी उसकी नैसर्गिक भावनाएँ प्रकट हुई हैं। 'अधखिला फूल' भी समाज के इसी मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी है। इसमें आदर्श नारी की पवित्र भावनाओं का चित्रण मिलता है। 'इस उपन्यास में ओझा आदि के माध्यम से देवभूति को पथभ्रष्ट करने के लिए जो षडयंत्र रचा गया है तथा वासमती के रूप में जिस प्रकार से दूती आदि की सृष्टि की गयी है वह भी सद्–असद् के प्रति परस्पर संघर्ष और अंत में देवभूति के पक्ष में सत्य की विजय का प्रतीक है। इस प्रकार से यह एक समस्या प्रधान सामाजिक उपन्यास है जिसके माध्यम से लेखक ने यह संकेत किया है कि नारी आदर्शपरक भावनाओं से युक्त होते हुए भी अपनी स्वाभाविक दुर्बलताओं से ग्रस्त होकर पथभ्रष्ट हो सकती है परंतु यदि उसके घरवाले विवेक से काम लें और किसी भी परिस्थिति में विचलित न हों तो उनके लिए किसी प्रकार की अरक्षा नहीं हो सकती। इस प्रकार इन कृतियों में लेखक का ध्यान निरन्तर मध्यमवर्गीय नारी और पुरुष के जीवन की विविध समस्याओं के साथ सामाजिक कुरीतियाँ, विधवा समस्या, अंध विश्वासों, अशिक्षा, स्त्री पराधीनता, प्रेम–प्रवृत्ति का विस्तार से चित्रण हुआ है।

मध्यमवर्ग का खुलकर चित्रण करने वाले उपन्यासकारों में महेता लज्जा शर्मा का स्थान विशिष्ट है। उनके मध्यमवर्ग से सम्बन्धित सामाजिक उपन्यासों में 'स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी', 'विपत्ति की कसौटी', 'हिन्दू गृहस्थ', 'आदर्श दम्पत्ति'; 'धूर्त रसिकलाल', 'सुशीला विधवा', 'आदर्श हिन्दू', 'बिगड़े का सुधार' को रख सकते हैं।

'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' रचना में उन्होंने नारी स्वातंत्र्य का विरोध किया है। लेखक ने दो बहिनों के माध्यम से भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का तुलनात्मक विवेचन किया है। 'धूर्त रसिकलाल' उपन्यास में छल–कपट की भावना रखनेवाले मित्र के द्वारा सज्जन पुरुष का छला जाना दिखाया है। सत्संग की महिमा और कुसंग के दोष इस उपन्यास में भी वर्णित किये गये हैं। ''आदर्श दम्पत्ति' में लेखक ने एक आदर्श पति–पत्नी के पवित्र प्रेम का वर्णन किया है। सामाजिक पारिवारिक और गार्हस्थ जीवन से सम्बन्धित आदर्श विचारधारा का परिचय इस उपन्यास में मिलता है।''[59] 'सुशीला विधवा' में लेखक ने विधवा जीवन की विविध समस्याओं को उठाया है। उसमें सुशीला नामक एक विधवा का आदर्श रूप में चित्रण किया है जो अल्प आयु में ही विधवा होकर फिर सारा जीवन अविवाहित रहती है। समाज उस पर अनेक प्रकार के मिथ्यारोपण करता है परंतु वह पवित्रता के साथ सात्विक जीवन व्यतीत करती है। इस प्रकार महेताजी के उपन्यासों में हम मध्यमवर्ग की अनेक प्रवत्तियों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मध्यमवर्ग की विधवा समस्या, नारी समस्या, भारतीय पश्चिमी सभ्यता का संघर्ष, पारिवारिक विघटन तथा बेकारी की समस्याओं का उल्लेख हुआ है।

इनके अलावा ब्रजनन्दन सहाय के 'राधाकांत', 'अद्‌भुत प्रायश्चित', 'सौन्दर्य पासक', 'अरण्यबाला', 'राजेन्द्र मालती', चुन्नीलाल खत्री का 'मूर्ख और बुद्धिमान', मन्न द्विवेदी गजपुरी का 'रामलाल', नाथूराम प्रेमी का 'दिया तले अंधेरा', ''राधाचरण गोस्वामी का 'सौदामिनी', रत्नचंद्र प्लीडर का 'नूतन चरित्र', देवीप्रसाद शर्मा का 'सुन्दर सरोजिनी', राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', चन्द्रशेखर पाठक– 'रमाबाई', ईश्वरी प्रसाद शर्मा का 'हरिण्यमणी', पं. मणिशंकर शर्मा का 'आदर्श परिवार' आदि उपन्यासों को ले सकते हैं। जिसमें हमें मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान विविध समस्याओं का ब्यौरा मिलता है।

ब्रजनन्दन सहाय का 'अरण्यबाला' और 'राधाकान्त' नामक दोनों ही उपन्यासों में आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'अरण्यबाला' में नौकरी, घूसखोरी, बेईमानी, असमान वितरण व्यवस्था, सरकार के प्रति आक्रोश जैसी समस्याओं का विवेचन मिलता है। डॉ. सुरेश सिन्हा लिखते हैंः

'उपन्यासों का नवीनता की ओर प्रयाण भी ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यासों से प्रारंभ होता है। उन्होंने अपने उपन्यासों में पहली बार प्रगतिशील तत्वों को स्थान दिया है और सामाजिक यथार्थ का साहसपूर्ण चित्रण किया है।'[60]

प्रेमचंद पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य में मध्यमवर्गीय आक्रोश खुलकर देखने को मिलता है। उपर्युक्त उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समस्याओं का चित्रण भी कहीं भी छुपा नहीं पाया जाता। आज का हिन्दी उपन्यास मध्यमवर्ग की समस्याओं का दिग्दर्शन जिस प्रकार प्रस्तुत कर रहा है उसकी पृष्ठभूमि का निर्माण उक्त युग के उपन्यासों में ही प्रस्तुत हुआ है। इस युग के उपन्यासों का अध्ययन करने से वाचकों के सामने दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ ज्यादा ध्यान में आती हैं। एक तो मध्यमवर्गीय समाज के चित्रण में वर्ग का आक्रोश एवम् दूसरी प्रवृत्ति में परवर्ती उपन्यासों के लिए पृष्ठभूमि प्रेरणा के रूप में सामने रखना।

प्रेमचंदकालीन सामाजिक उपन्यासों में भी मध्यमवर्ग का बखूबी चित्रांकन किया गया है। प्रेमचन्द के समसामायिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग की समस्याओं का विवेचन व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। प्रेमचंदकालीन सामाजिक उपन्यासकारों में हम मुख्य रूप से जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, देवनारायण द्विवेदी, शंकरशरण प्रसाद सिंह पाण्डेय, बेचेन शर्मा 'उग्र', प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्री चण्डीप्रसाद हृदयेश, प्रेमचंद, ऋषभचरण जैन, रमाकान्त त्रिपाठी को ले सकते हैं।

प्रेमचंद युगीन उपन्यासों में मध्यमवर्गीय चित्रण की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद का 'कंकाल' प्रमुख है। इसके प्रतिनिध पात्र मध्यमवर्गीय हैं। कंकाल में प्रसादजी समाज में फैले अनाचार और भ्रष्टाचार को स्पष्ट करने के लिए प्रसंगवश वेश्यावृत्ति का चित्रण करते हैं।''[61] ''बहुत–सी स्वेच्छा से आई थीं और कितने को कलंक लगने पर घरवालों ने ही मेले में छोड़ दी।''[62] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है किः ''उसका समाज आधुनिक, नागरिक और मध्य श्रेणी का है।''[63] इसके उपन्यास में मध्यमवर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिलता है। इस संदर्भ में कंकाल के प्रकाशकीय वक्तव्य का यह अंश पढ़ने जैसा है– ''चरित्रों के आदर्श और पतन के सम्बन्ध में लेखक ने अपना कोई मत स्थापित नहीं करना चाहा है, वरन् वर्तमान काल की सामाजिक, धार्मिक और सांसारिक मनोवृत्तियों का द्वन्द्व चल रहा है उसे तटस्थ दृष्टि से उसका क्रियात्मक रूप चित्रण में तद्नुकूल घटनाएँ संगठित कर दी है।'[64]

जयशंकर प्रसाद का दूसरा उपन्यास 'तितली' के अंतर्गत ग्राम्य समाज के मध्यमवर्ग की मुकदमेबाजी,

अत्याचार, जातीय संकीर्णता और कुरीतियों का खुलकर चित्रण किया है। 'तितली' में नारी मात्र के लिए चाहे वह सधवा हो या विधवा, स्त्री धन की आवश्यकता बतलायी गई है। इस कृति के अंतर्गत वे संयुक्त परिवार, जातिवाद, संस्थावाद की जड़ता एवं विकारों को समाज के सामने खुला करते हैं। संयुक्त परिवार प्रथा के संत्रास को प्रकट करते हुए प्रसाद जी 'तितली' में लिखित हैं– ''भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब योजना की कड़ियाँ चूर–चूर हो रही हैं। वह आर्थिक संगठन अब नहीं रहा जिसमें कुल का एक प्रमुख पात्रों के मस्तिष्क का संचालन करता हुआ रूचि की समता का भारत ठीक रखता था।... इसीलिए सम्मिलित कुटुम्ब का जीवन दुःखदायी हो रहा है।''[65]

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने मध्यमवर्ग की समस्याओं का चित्रण युगीन परिवेश के आधार पर किया है। कौशिक जी के 'माँ', 'भिखारिनी' तथा 'संघर्ष' में मध्यमवर्ग की सामाजिक समस्याओं का विवरण मिलता है। उनमें 'माँ' उपन्यास में वेश्याजीवन की विडम्बना, आर्थिक विपन्नता, कन्या विवाह की समस्या, स्वार्थी मनोवृत्ति का अंकन मिलता है। वेश्या का एकमात्र कारण लेखक निर्धनता को ही मानते हैं। ''मध्यमवर्गीय कुटुम्ब की जीवन रीति तथा उनकी कतिपय समस्याओं और वेश्यालयों के वातावरण का चित्रण इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है।''[66]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के उपन्यासों में भी हमें मध्यमवर्ग का चरित्र चित्रण देखने को मिलता है। 'निरुपमा', 'अलका', 'कुल्ली भाट' आदि उपन्यासों में मध्यमवर्ग का विवरण मिलता है। 'कुल्ली माट' के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है, ''कुल्ली भाट का व्यंग्य पूरे युग पर है। एक और बंगाल की मध्यमवर्गीय संस्कृति है, रहस्यवाद की बातें हैं, साहित्य और संगीत की चर्चा है, दूसरी और समाज के अछूते हैं, उच्च वर्गो की सहनशीलता है, हिन्दू–मुसलमान का तीव्र भेद–भाव, बड़े–बड़े नेताओं मे सच्ची समाज सेवा के प्रति उपेक्षा है, कल्पना की उड़ान भरनेवाले कवियों में क्रांति का दम्भ है।''[67]

'निरुपमा' में हम देखते हैं कि मध्यमवर्ग की नारी किस प्रकार आधुनिक एवम् प्राचीन विचारसरणी के कारण मन ही मन झुरती है। वह दोनों में से किसी भी विचारसरणी को पूर्णतःअपना नहीं सकती। उसकी मान्यताएँ, रुढ़ियाँ, परंपराएँ उसे ऐसा करने से रोकती हैं। हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास में लेखक ने लिखा हैः ''इसकी प्रधान पात्री निरुपमा नामक युवती है। प्राचीनता और नवीनता के बंधन में ग्रस्त सामाजिक पृष्ठभूमि में निरुपमा जीवन पथ पर संघर्ष करती हुई बढ़ती रहती है। उसके रूप में लेखक ने एक सुदृढ़ इच्छा शक्तिवाली पात्री को प्रस्तुत किया है।''[68]

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के 'बुधुआ की बेटी', 'चन्द हसीनों के खतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'शराबी', 'जी जी जी' एवम् 'फागुन के चार दिन' उपन्यासों को ले सकते हैं। जिसके अंतर्गत मध्यमवर्ग का चित्रण देखने को मिलता है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'चन्द हसीनों के खतूत' में समाज में साम्प्रदायिक सम्भावना का प्रारम्भ करते हुए तत्कालीन सामाजिक कुव्यवस्था को खुला करने का प्रयास किया है। मध्यमवर्ग में प्रचलित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रथा, पाखण्डों को नकारा है। मध्यमवर्ग को नयी चेतना एवं प्रगतिशील विचारों को अंगीकार करने का संदेश दिया है। भारतीय समाज में विधवाप्रथा, दहेज प्रथा, बहुपत्नी, अनमेल विवाह आदि अनेक कुप्रथाओं से त्रस्त नारी को जीवित रहने के लिए वेश्यालय ही अंतिम शरणस्थल है। 'शराबी' में मध्यमवर्गीय नारी की दशा और वैवाहिक विडम्बनाओं का अच्छा चित्रण है। यह एक सामंतवादी परिवार की जवाहर नामक कन्या से सम्बन्धित है। आर्थिक स्थिति के ह्रास एवं उसके पिता के अत्यन्त मद्यप होने के कारण उसे मानक नामक व्यक्ति के वहाँ आसरा लेना पडता है। यहाँ पर लेखक ने हमें यह दिखाने का भी प्रयत्न किया है कि मद्यपान की कुप्रवृत्ति ही सामाजिक पतन का सबसे बड़ा कारण है। 'जी जी जी' नामक उपन्यास में प्रभा नामक कन्या का उसके माता–पिता द्वारा अनमेल विवाह कर दिया जाता है। यहाँ पर मध्यमवर्ग में प्रचलित अनमेल विवाह की समस्याओं को उठाया गया है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अपने उपन्यासों के अन्तर्गत मध्यमवर्गीय पात्रों को ध्यान में रखकर उस वर्ग की सभी दशा, दिशा और संभवित संभावनाओं का आलेखन किया है। 'विजय' नामक उपन्यास में मध्यवर्ग समाज की विधवा समस्या को लिया हुआ है। '''विदा' में मध्यमवर्ग की बहुआयामी समस्याओं, आदर्शों, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, समाज की दुर्व्यवस्था और मर्यादाओं के प्रति आक्रोश तथा विद्रोह को सकल अभिव्यक्ति मिली है। डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में 'विदा अनेक अभावों के होते हुए भी मध्यमवर्गीय पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित हिन्दी के कुछ ही उपन्यासों में से एक है और अपना अन्तमय स्थान रखता है।''[69]

इस युग के प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीप्रसाद वाजपेयी का नाम बहुप्रचलित है। मध्यमवर्ग की सभी संभवतः परिस्थितियों का वर्णन उनके उपन्यास 'निमंत्रण', 'चलते–चलते', 'प्रेमपथ', 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'मुस्कान', 'विश्वास का बल', 'उनसे न कहना', 'एक प्रश्न', 'त्यागमयी', 'दो बहिनें', 'मनुष्य और देवता', 'यथार्थ से आगे', 'राजपथ', 'अधिकार का प्रश्न' में वर्णित है। डॉ. ललित शुकल का कथन दृष्टव्य है: ''वाजपेयी जी का क्षेत्र अधिकांशतः भारतीय मध्यमवर्ग रहा है। वहीं का

प्रेम, वहीं की कहानी और वहीं की समस्या।''[70] मध्यमवर्ग की नयी मान्यताएँ व नवीन विचारधारा इनकी कृतियों की विशेषता है। 'उनसे न कहना' में कीर्तिदेव और उसकी पत्नी कल्याणी की अहम्मन्यता और उनके पुत्र विजय का आहत आक्रामक अहम् आदि मध्यमवर्ग की मनोवैज्ञानिक समस्याएँ प्रस्तुत की हैं। 'उनसे न कहना' उपन्यास का विवरण देते हुए डॉ. प्रतापनारायण टंडन लिखते हैं: ''उनसे न कहना' में वाजपेयी जी ने मुख्यतः आधुनिक सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में नारी समाज की कतिपय महत्वपूर्ण समस्या पर विचार किया है। मध्यमवर्ग में स्त्री की क्या सामाजिक स्थिति है इसका व्यापक विवेचन इस उपन्यास में लेखक ने किया है।''[71]

ऋषभचरण जैन ने अपने उपन्यास में मध्यमवर्ग की विडम्बनाओं और विकृतियों को बखूबी चित्रित किया है। मध्यमवर्ग के यथार्थवादी दृष्टिकोण को भी दर्शाया है। मध्यमवर्ग के खोखलेपन को एवम् प्रदर्शनप्रियता का वर्णन किया है। 'तपोभूमि' में मध्यमवर्गीय पात्र धारिणी ने सुन्दरलाल जैसे कुकर्मियों से जीवंत संघर्ष किया है। उसमें मध्यमवर्गीय समाज से जुड़ी हुई अनेक समस्याओं को सहज रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

''प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग की झूठी शान, मर्यादा तथा आदर्श को प्रथम बार प्रवेश दिया है। 'निर्मला' में मध्यवर्ग की दहेजप्रथा और अनमेल विवाह जैसी सामाजिक समस्याओं के साथ मध्यमवर्गीय परिवार का चित्र उभरकर सामने आया है। 'गबन' का नायक रमाकान्त ऐसे ही मध्यमवर्ग का जीता जागता व्यक्ति है। 'गोदान' में आकर प्रेमचंद ने होरी के रूप में निम्न मध्यमवर्ग का नायकत्व स्वीकार किया है।''[72] डॉ. राजेश्वर गुरु का कहना है कि ''मध्यमवर्गीय मन लेकर उन्होंने समस्याओं को क्रांति की दृष्टि से नहीं, विकास की दृष्टि से देखना चाहा।'' डॉ. इन्द्रनाथ मदान का भी कहना है कि ''प्रेमचंद यदि महान हैं तो इसलिए कि उन्होंने किसानों के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय गंभीर विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी, जिस समय देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे थे।''[73] प्रेमचंद ने मध्यमवर्ग की कुण्ठा, विषमता और दुर्बलता का भी यथार्थ वर्णन किया है। ''ध्यान देने की बात है कि अगर प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासकारों ने कथा–नायकों को राजसी वैभव–विलास से मुक्त कर सामान्य मध्यवर्ग की ओर मोड़ा तो प्रेमचन्द ने सामान्य मध्यवर्ग के पात्रों को उनके जीवन के सुख–दुःख की अनुभूतियों से संपृक्त किया और उनके जीवन की बहुपक्षीय भावनाओं की अभिव्यक्ति को अपना कार्यक्षेत्र चुना।''[74]

प्रेमचंद के 'सेवासदन', 'वरदान', 'प्रेमाश्रय', 'निर्मला', प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि आदि उपन्यासों में मध्यवर्ग के संघर्ष, दुर्बलताएँ, चारित्रिक वैशिष्ट्य, चेतना का विकास और बहुआयामी समस्याएँ रेखांकित की है। 'सेवासदन' में मध्यमवर्गीय नारी के साथ जुड़े हुए विविध प्रश्न को उकेरा है। उसमें दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, बाल विवाह, चरित्र भंजन, आर्थिक पराधीनता और विधवा समस्या को निरूपित किया है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय नारी सुमन के द्वारा उक्त समस्याओं का गंभीरता से वर्णन किया है। डॉ. भटनाकर का कथन दृष्टव्य है: ''वास्तव में सेवासदन मध्यकाल के जीवन का ही उपन्यास है। उसमें मध्यवर्गीय परिवारों की एक ज्वलंत समस्या पर प्रकाश डाला है। यह समस्या नारी जीवन की समस्या है जो वैवाहिक, वैधव्य और वेश्यावृत्ति के पहलू विशेष रूप से रखती है।''[75]

'रंगभूमि' नामक उपन्यास में ताहिर अली निम्न मध्यमवर्ग का प्रतिनिधि है। डॉ. गांगुली मध्यमवर्ग की राजनैतिक चेतना को अभिव्यक्ति देनेवापाल पात्र है। इस उपन्यास में मध्यमवर्ग के समाज में प्रवर्तमान आर्थिक असंतुलन, संयुक्त परिवार का विघटन, संयुक्त परिवार का खोखलापन, बेरोजगारी की समस्या, बाह्य आडम्बर एवं स्वार्थपूर्ण भावना का जीवंत चित्रण प्रदर्शित किया गया है। 'कायाकल्प' में दहेज प्रथा, विधवा समस्या, प्रेम विवाह, रुढ़ियाँ, आर्थिक संकट, आदि समस्याएँ इस माध्यम से चित्रित हुई हैं। ब्रजधर, बागीश्वरी, हरिसेवकसिंह आदि इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ''हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य, मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं एवं पारिवारिक स्थिति का भी उन्होंने यथार्थ चित्रण किया है।''[76]

'निर्मला' का कथातत्व मध्यमवर्गी? समाज की नारी की असह्य पीड़ा का चिह्न रूप है। निर्मला के अनमेल विवाह की भाँति ही अनेक मध्यमवर्गीय परिवारों में इस कुप्रथा को पोषण देने के मूल में दहेज की समस्या विद्यमान है। इस उपन्यास में मध्यमवर्ग की अनमेल विवाह, दहेज और प्रेम की समस्या को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से निरुपायित किया है।

'गोदान' प्रेमचंद का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में ग्रामीण मध्यमवर्ग एवम् नगरीय मध्यमवर्ग का प्रासंगिक चित्रण देखने को मिलता है। इसका मुख्य नायक 'होरी' उच्च एवं मध्यवर्ग से जकड़ा हुआ है। 'मध्यवर्ग के जीवन एवं नवीन मध्यवर्ग के मूल्यों की टकराहट भी दिखलायी है। यह प्रसंग गोविंदी एवं मालती, रायसाहेब एवं उनके पुत्र–पुत्री, होरी एवं गोबर, झुनिया–भोला के माध्यम से स्पष्ट अभिव्यक्ति पा सका है।''[77]

ग्रामीण मध्यमवर्ग में देखने को मिलता हुआ अशिक्षाजन्य पारस्परिक द्वेष, द्वन्द्व, अन्धानुकरण, असहनशीलता, आरोपबाजी, दगाखोरी, रिश्वतखोरी, भाग्यवाद में अटूट श्रद्धा, अशिष्टता आदि गुणों का विवरण 'गोदान' में मिलता है। 'गोदान' में नागरिक जीवन का केवल वही अंश वर्णित हुआ है, जो ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है। प्रो. महेता, डॉ. मालती, संपादक ओमकारनाथ, सरजो एवं मिस्टर कौल की भूमिका मुख्य है, जिसके द्वारा मध्यवर्ग की समस्याओं का चित्रण किया गया है। मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं में प्रेम की समस्या, मालती और महेता के माध्यम से अंकित है। 'गोदान' में अनेक ऐसे मध्यवर्गीय पात्र हैं जो मध्यवर्ग में देखने को मिलता प्रदर्शनप्रिय और बाह्याडम्बर की कुप्रवृत्तियों से ग्रसित हैं। सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों की अनेक समस्याओं को मध्यवर्गीय पात्रों द्वारा उठाया गया है।

'गबन' की मुख्य समस्या आर्थिक है जिसका संबंध विशेष रूप से हमारे देश के मध्यवर्गीय समाज से है।''[78] मध्यमवर्गीय जीवन की विषमताओं और विडम्बनाओं का बड़ा जीवंत चित्रण जालपा और रमानाथ के माध्यम से दर्शाया है। ''मध्यवर्गीय नारी समाज में व्याप्त आभूषणप्रियता की भावना इस उपन्यास के कथा–चक्र का केन्द्र है।''[79] भूपसिंह भूपेन्द्र का कथन दृष्टव्य है: ''गबन में मध्यवर्ग से सम्बन्धित मिथ्या प्रदर्शनप्रियता, नारी की आभूषण प्रियता, विदेशी शासन तंत्र की कुरूपता, भ्रष्ट आचरण, समाज में व्याप्त घूसखोरी, पुलिस विभाग की धूर्तता, संयुक्त परिवार प्रणाली के दोष और विधवा समाज की नाना समस्याओं का आक्रोशपूर्ण आलेख प्रस्तुत किया गया है।''[80]

प्रेमचंदकालीन उपन्यासकारों में उपर्युक्त उपन्यासकारों के अलावा हम शंकरशरण प्रसाद का 'दो विधवाएँ', लक्ष्मीनारायण सुधांशु का 'भ्रातृप्रेम', विश्वम्भरनाथ जिज्जा का 'प्रेम परिणाम', रमाकान्त त्रिपाठी का 'समाज की खोपड़ी' आदि ले सकते हैं, जिसमें तत्कालीन मध्यमवर्ग की विविध समस्याओं का दशा–दिशा का यत्र–तत्र विवरण मिलता है।

प्रेमचंद परवर्ती सामाजिक उपन्यासों में मध्यवर्ग का विवरण स्पष्ट होता जाता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में वर्ग–समाज, जाति समाज की अपेक्षा अधिक अस्थिर तथा गत्यात्मक है। प्रेमचंद परवर्ती हिन्दी उपन्यास पर काफी विकसित मध्यवर्गीय उपसभ्यता का असर पड़ने से वह व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, समाजवादी, प्रकृतवादी, अस्तित्ववादी, आंचलिक आदि अनेकों रूपों में निजी भिन्नताओं के साथ विकसीत होने लगा। स्वातन्त्र्योत्तर भारत का आर्थिक नव–निर्माण अनेक प्रकार की योजनाओं के माध्यम से प्रारंभ हुआ। महात्मा गांधी ग्रामाभिमुख आर्थिक नीतियों के हिमायती थे तो पंडित नेहरू औद्योगिकरण को विकास

करने एवं दुनिया के साथ चलने के लिए आवश्यक समझते थे। भारतीय समाज वस्तुतः गाँवों का समाज है और भारत मूलतः कृषिप्रधान देश है। अतः गाँधीजी किसानों को प्रमुखता देते थे। ''उन्हें डर था कि औद्योगिकरण मानव जाति के लिए एक अभिशाप बन जायेगा। इससे एक राष्ट्र का शोषण होता है। उद्योगवाद का दरोमदार पूरी तरह इस बात पर होता है कि आप में शोषण करने की क्षमता हो। विदेशी बाजार आपके लिए खुले हों और आपके साथ कोई स्पर्धा करनेवाला न हो।''[४]

स्वतंत्र भारत गाँधीजी की अपेक्षा नेहरू जी के मार्ग पर चलने लगा। औद्योगिक क्षेत्र में देश ने विकास भी गिया किन्तु उसकी गति वह नहीं रही जिसकी कल्पना तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू ने की थी। पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं और कार्यान्वित हुई। अर्थव्यवस्था पूँजीवाद से प्रभावित हुई और क्रमशः स्थिति ऐसी बनती गयी कि भारतीय पूँजीपति शोषक की भूमिका निभाने लगे। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग में भ्रष्ट तरीके से अधिकाधिक पूँजी एकत्र करने की होड़ सी लगी। नौकरीशाही, अवसरवादिता, धनलोलुपता और वैयक्तिक स्वार्थों के चलते विकास गति पर प्रभाव पड़ा।

भारतीय अर्थव्यवस्था सन् 1962, 1964, 1971 के युद्ध, बंगलादेश के शरणार्थियों का बोझ, मध्यावधि चुनाव आदि के कारण जर्जर हुई। महँगाई, बेकारी और गरीबी से जनजीवन अभिशप्त हुआ। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न होने से जनसाधारण में असन्तोष की भावना बढ़ने लगी। सरकार महँगाई को नियंत्रित करने में असफल रही। समाज में रिश्वतखोरी, मुनाफाखोरी एवं तस्करी की प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। लोगों में देश के लिए त्याग करने की अपेक्षा देश से अधिक से अधिक लेने की भावना प्रबल होती गई। जनसंख्या में निरंतर वृद्धि, प्राकृतिक संकट आदि के कारण खाद्य समस्या राष्ट्र के लिए चुनौती बनी। चौतरफा व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण व्यवस्था के प्रति आम जनता की आस्था डिगने लगी। एक तरफ सरकारी धन का दुरुपयोग हो रहा था तो दूसरी तरफ देश की विकास योजनाओं को अवरुद्ध होने से बचाने एवं विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सरकार विदेशों से उनकी शर्तो पर कर्ज लेती रही। इन सारी परिस्थितियों से मध्यवर्गीय आम जनता उद्वेलित एवं विचलित हुई। इन सभी का प्रभाव स्वातंत्र्योत्तर या प्रेमचंद परवर्ती उपन्यासों में देखा जा सकता है।

जिस दौर से समाज गुजरेगा उसका सर्वाधिक प्रभाव हमें मध्यवर्ग पर देखने को मिलता है। इसलिए प्रेमचंद परवर्ती उपन्यासों में मध्यवर्ग को केन्द्र स्थान पर रखा गया है। मध्यमवर्ग की प्रायः सभी समस्याओं एवं विडम्बनाओं का उल्लेख हुआ है।

प्रेमचंद परवर्ती एवं 1960 से पहले के लेखकों में उषादेवी मित्रा, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, प्रियंवदा देवी, रांगेय राघव, अज्ञेय, रामेश्वर शुकल 'अंचल', अमृतलाल नागर, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती और राजेन्द्र यादव का समावेश होता है। उनके उपन्यासों में मध्यवर्ग का विधिवत् विवरण देखने को मिलता है। मध्यवर्गीय समाज में प्रवर्तमान विविध समस्याओं को भी दर्शाया है। भूपसिंह भूपेन्द्र का कथन दृष्टव्य हैः ''प्रेमचंद परवर्ती उपन्यास मध्यवर्ग की प्रतिमा व परिवेश पर और भी सघनता से व्यापक फोकस डालता है। इसी दौर के अनेक उपन्यासकारों ने मध्यवर्गीय पात्रों की व्यक्तिवादी प्रतिमा को भी उभारा, और मनोविश्लेषण के प्रति और अधिक सतर्कता बरती गई। स्वातंत्र्योत्तर परिवर्तित परिस्थितियों में इस वर्ग के चरित्र व गतिविधियों में भी विविध घुमाव और परिवर्तन आये हैं। अस्तित्व के प्रति खतरे बढ़े हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यास हवा के परिवर्तित रुख को पहचानता है तथा तद्भव संक्रांति को चित्रित करने के लिए मध्यवर्ग के पात्रों पर ज्यादा निर्भर होने लगा है।''[82] मध्यवर्ग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक मनोवैज्ञानिक दशा और दिशाओं का वर्णन प्रेमचंद परवर्ती उपन्यासकारों ने बखूबी किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' प्रमुखतः मध्यवर्ग के कथा लेखक हैं। निम्न मध्यवर्ग के सजीव चित्रण की सकलता का रहस्य 'अश्क' का निजी जीवन है। 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'पत्थर-अल-पत्थर', 'शहर में घूमता आईना' इत्यादि उपन्यास मध्यवर्ग के कारुणिक चित्रण के लिए महत्वपूर्ण हैं। 'गिरती दीवारें' में उपन्यासकार ने स्वयं यह सूक्तियाँ लिखी हैंः ''कहानी उसमें (गिरती दीवारें में) महत्व नहीं रखती, महत्व रखता है निम्न मध्यवर्ग के वातावरण का चित्रण और इस अंधेरे में अपनी प्रतिभा का विकास पथ खोजने वाले अति भाव-प्रवण युवक की तड़प और उसका मानसिक विकास''[83] मध्यवर्गीय लोगों के अपार कष्ट तथा समस्याओं के चित्रण ने 'अश्क' के कलाकार मन को यथार्थ की अनुभूतियाँ तो दी ही, लेखक को एक सूक्ष्म और पैनी दृष्टि भी मिली। 'अश्क' के उपन्यास मध्यवर्ग की विवशताओं, घुटन एवं लाचारी की अभिव्यक्ति है। 'अश्क' का जीवन निम्न मध्यवर्गीय समाज की मानसिक कुण्ठाओं, नैतिक वर्जनाओं तथा आर्थिक विषमताओं के परिवेश में विकसित हुआ है। जीवन के तिक्त अनुभवों तथा विकट भावभूमियों ने उनके व्यक्तित्व तथा दृष्टिकोण को प्रभावित किया है।''[84]

नागार्जुन के उपन्यासों में मध्यवर्ग की प्रगतिशील प्रतिमा देखने को मिलती है। ग्रामीण मध्यवर्ग का ठोस चित्रण देखने को मिलता है। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौधा', 'बाबा-बटेसरनाथ',

'दुखमोचन' तथा 'उग्रतारा' को महत्वपूर्ण मान सकते हैं। इन उपन्यासों में मध्यवर्ग को प्रगतिशील वर्ग के रूप में चित्रित किया गया है, जो ग्रामीण जनता में प्रगति का बीज बोते दिखाई देते हैं। नागार्जुन के मध्यवर्गीय पात्र राजनीतिक विश्वासों में साम्यवाद के समर्थक हैं। इन्हों ने अपने उपन्यासों में अनमेल विवाह तथा वैधव्य की समस्याओं को उठाया है। 'रतिनाथ की चाची' में विवाह समस्या, जाति–पाँति और कुल प्रतिष्ठा के पाखण्ड को ध्यान में रखकर मध्यवर्गीय समाज में प्रवर्तमान समस्याओं को उठाया गया है। 'एक कुलीन और विपन्न विध'ा को समाज के लांछन, अपमान, तिरस्कार आदि सहन करते–करते किस तरह मौत की गोद में विपदाओं से त्राण पाना पड़ता है, इसकी करुण कथा को सजीव और विशद रूप में अंकित किया गया है।''[85]

इलाचन्द्र जोशी ने 'लज्जा', 'संन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेम और छाया', 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' इत्यादि उपन्यास लिखे हैं। जोशीजी के उपन्यासों में मध्यवर्ग की मानसिक कुंठाएँ विस्तार से वर्णित हैं। इनके अधिकांश नायक दुर्बल चरित्र के हैं क्योंकि लेखक को विश्वास है कि वर्तमान युग की परिस्थितियों ने आज के मानव के स्वभाव को जटिल, कमजोर तथा अस्तित्वहीन बना दिया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याएँ भी चित्रित की हैं। 'संन्यासी' में कथा नायक नन्दकिशोर के अहंभाव का सूक्ष्म विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। इसमें मध्यवर्ग के वैवाहिक जीवन, संस्कार संकीर्णता, स्त्री विद्रोह, यौन कुण्ठा, आर्थिक संकट, धर्म शिक्षा और राजनीति के संदर्भ से संलग्न सभी समस्याओं का वर्णन किया गया है।

यशपाल की रचनाओं में भी मध्यवर्गीय समाज के सर्वतोमुखी उत्थान की तड़प है। इन्होंने भी मध्यमवर्ग में प्रवर्तमान धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक विषमताओं और धार्मिक विसंगतियों पर निर्मम प्रहार किया है। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' आदि उपन्यासों में मध्यमवर्ग की छाप देखने को मिलती है। '' 'देशद्रोही' में मध्यवर्ग के एक बुद्धिजीवी खन्ना का चित्रण है जो अपनी मानसिक उलझनों के बावजूद व्यक्ति के घेरे से निकलकर समाज की ओर उन्मुख होता है और साम्यवादी विचारधारा को अपना लेता है।''[86]

'मनुष्य के रूप' में उपन्यासकारने विधवा समस्या पर विचार करते हुए समाधान के रूप में काफी प्रगतिशील मार्ग को सुझा दिया है। 'मनुष्य के रूप में मार्क्सवादी चिन्तन के अनुरूप विषय–सामग्री एकत्र

की है। रुढ़िग्रस्त और जर्जर संस्कारों में पली हुई और पुरुष समाज के कठोर बंधनों में जकड़ी हुई उपेक्षित तथा तिरस्कृत नारी का भौतिक उत्कर्ष दिखाकर यशपाल ने वर्तमान व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया है।''[87] 'देशद्रोही' में मध्यवर्ग के एक बुद्धिजीवी खन्ना का चित्रण है जो अपनी मानसिक उलझनों के बावजूद व्यक्ति के घेरे से निकलकर समाज की ओर उन्मुख होता है और साम्यवादी विचारधारा को अपना लेता है। पर ऐसा वह बौद्धिक स्तर पर ही कर पाता है – साम्यवाद की आत्माओं को पहचाने बिना इसमें खन्ना तथा उसकी पत्नी चन्दा की कुंठाओं और सीमाओं के रूप में मध्यवर्ग की सामाजिक चेतना का चित्रण हुआ है।

अज्ञेय के साहित्य में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक प्रणाली का प्रभाव देखने को मिलता है। इनके पात्र किसी विशेष वर्ग या समाज से नहीं लिये जाते, बल्कि ये प्रत्येक क्षेत्र से लिये जाते हैं। ''शेखर के निजी स्वर हैं जो सम और विषम होने की गवाही देते हैं और जिनका घोर विरोध भी हुआ है।''[88]
इनके उपन्यासों में मध्यवर्ग के पात्र विद्रोही भावनाओं को लेकर आगे बढ़ते हैं। ये अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए परिवार, समाज और देश से लड़ते हैं, पर असफल रहते हैं और इसी असफलता का आक्रोश इनके जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। 'शेखर एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' में मध्यवर्ग के विद्रोही व्यक्ति है। 'नदी के द्वीप' में मध्यवर्ग की प्रेम, यौन तृप्ति और विवाह की समस्याओं तक सीमित है।

रांगेय राघव प्रमुखतः समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। इसीलिए इनके उपन्यासों में वर्ग–वैषम्य, सामाजिक विकृतियाँ, राजनीतिक असंतोष तथा वर्ग संघर्ष का विशुद्धता से चित्रण किया गया है। उनके सामाजिक उपन्यासों में 'विषाद मठ', 'घरौंदा', 'मुर्दो का टीला', 'सीधा सादा रास्ता', 'कब तक पुकारुँ' तथा 'राई और पर्वत' इत्यादि हैं। 'घरौंदा' विद्यार्थी जीवन की कहानी है। इसमें मध्यवर्ग की प्रदर्शनप्रियता, भारतीय तथा विदेशी संस्कृति का संघर्ष, विवाह तथा प्रेम की समस्याओं के साथ ही राजनीतिक चेतना का भी वर्णन है। 'हजूर' उपन्यास मध्यमवर्ग का व्यंग्यात्मक चित्र है, जिसमें कुत्ते के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग की जी हुजूरी का वर्णन किया है।

डॉ. धर्मवीर भारती प्रयोगवाद तथा नयी जागरुक पीढ़ी के उपन्यास लेखक हैं। 'गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' इनके दो उपन्यास हैं। आज के मध्यवर्गीय समाज के परिवेश में कुंठा एवं निराशा से आक्रान्त व्यक्ति या नवयुवक अपने अहं की सृष्टि के अपने आदर्शों को स्थिर रखना चाहता है। इसी भावुक और रोमांटिक धरातल पर लेखक ने अपने उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' से मध्यवर्गीय समाज की आधारभूमि पर लिखे हुए उपन्यासों की नयी परम्परा प्रारम्भ होती है। इस परम्परा के युवकों की दृष्टि हर प्रकार के काल्पनिक आग्रह से मुक्त ठोस पदार्थ के धरातल पर आरंभ से ही सिर उठाकर बड़ी हुई और उन्होंने जीवन की विभिन्न उलझनों और समस्याओं का सम्प्रेषण यथार्थ संवेदना और स्थितियों की पहचान रखनेवाले पात्रों द्वारा की है।''[89] 'गुनाहों का देवता' शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय परिवार की तथा 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' शिक्षित तथा अशिक्षित ग्रामीण मध्यवर्ग की समस्याओं को यथार्थपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों में अमृतराय के उपन्यासों का मध्यवर्ग की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। 'बीज', 'नागफनी का दंश', 'हाथी के दाँत' में मध्यवर्ग की समस्याओं का अच्छा विश्लेषण किया गया है। इन्हों ने वर्ग वैषम्य से पीड़ित मानव की करुण कहानी को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। 'नागफनी का दंश' में अमृतराय ने मध्यवर्ग के कुंठित एवं असफल पारिवारिक जीवन का वर्णन किया है। लेखक का विश्वास है कि बिना सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था के केवल भावना पर आधारित प्रेम क्षणिक होता है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में भी मध्यमवर्गीय जीवन के व्यापक सत्य उद्घाटित किये गए हैं। 'महाजाल' में पाँचू का परिवार इस वर्ग का प्रतिनिधित्व बखूबी निभाता है। आर्थिक संकट के दरम्यान भी यह लोग छद्म प्रतिष्ठा का पाखंड खेलते हैं। शीबु का दुर्बलताओं भरा चरित्र, पाँचू और मंगला की जीवन संघर्षशीलता मध्यवर्ग की अच्छी–बुरी प्रवृत्तियों का परिचायक है। 'बूँद और समुद्र' में खुद लेखक का कथन है कि: ''इस उपन्यास में मैंने अपना और आपका अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण–दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आँकने का यथामति यथासाध्य प्रयत्न किया है और अपने और आपके चरित्रों से ही इन पात्रों को गढ़ा है।''[90] मध्यवर्गीय नारी की लाचारी का वर्णन एवं उनके विद्रोही स्वर का यथार्थ वर्णन किया है।

आलोच्य युग के और भी अनेक उपन्यासकारों का नामोल्लेख किया जा सकता है जिनकी कृतियों में मध्यमवर्गीय समाज की विभिन्न समस्याओं को उठाने का प्रयास किया गया है। लेकिन हमारी चर्चा उपर्युक्त उपन्यासकार के उपन्यासों तक ही सीमित रहेगी।

* * * * *

गुजराती साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास की विकास यात्राः

उपन्यास सबसे लोकप्रिय एवं लोकग्राह्य साहित्य स्वरूप है। उसे बंगाली और हिन्दी में उपनयास , मराठी में 'कादंबरी', मलयालम में 'कथा', सिंदी में 'उफसाना', फ्रेंच में 'रोमां', अंग्रेज में 'नॉवेल' एवम् गुजराती में 'नवलकथा' कहा जाता है।

गुजराती नवलकथा की विकासयात्रा को निम्नलिखित छः काल खण्डों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) ई.. 1862 से 1887 (प्रथम युग) (नंदशंकर युग, सुधारक युग, ऐतिहासिक नवलयुग, करणघेलो युग)

(2) ई. 1887 से 1915 (द्वितीय युग) (गोवर्धन युग, पंडित युग, सरस्वतीचंद्र युग, सामाजिक नवलकथा युग)

(3) ई. 1915 से 1933 (तृतीय युग) (मुनशी युग, पाटण की प्रभुता युग, गुजरात की अस्मिता का युग)

(4) ई. 1933 से 1950 (चतुर्त युग) (रमणलाल देसाई युग, ग्रामलक्ष्मी युग, स्वराज्य संग्राम युग)

(5) अनुस्वातंत्र्य युग (पंचम युग) ई. 1950 से. 1975 (प्रयोग युग, मनो विश्लेषण युग)

(6) अद्यतन सांप्रत युग (छठा युग) ई. 1975 से आद्य पर्यत : प्रयोगपरायण आंतरचेतना प्रवाह दर्शन युग।

गुजराती सामाजिक उपन्यास की विकासयात्राः

सामाजिक उपन्यास के अंतर्गत समाज की विविध समस्याओं को ध्यान में रखकर उसकी कथावस्तु का निर्माण किया जाता है। समाज के अंतर्गत प्रवर्तमान विभिन्न प्रश्नों के कारण ही वह गतिशील एवम् सजीवरूप धारण करती है। व्यक्ति के जीवन में जो भी समस्या उद्भवित होती है, वही समस्याओं को उपन्यासकार अपने उपन्यास में वर्णित करने की कोशिश करता है, उपन्यास समाज या मानव जीवन की विविध समस्याओं का दर्पण है। सामाजिक उपन्यास के अंतर्गत उपन्यासकार वास्तविकता की दृष्टि से यथार्थ का निरूपण करता है।

गुजराती साहित्य में अर्वाचीन युग का आगमन नर्मद से हुआ। वही अर्वाचीन गद्य–पद्य के पितामह बने। उसी के साथ नंदशंकर यात्रा का आरंभ हुआ। ई.स. 1866 में. नंदशंकर महेता कृत 'करण घेलो' गुजराती भाषा का सर्वप्रथम उपन्यास माना जाता है, जो ऐतिहासिक उपन्यास है।

सामाजिक नवलकथा का प्रारंभ 'करण घेलो' के बाद ई. 1866 के दिसम्बर के अंत भाग में महीपतराम नीलकंठ द्वारा रचित 'सासु वहुनी लड़ाई' से मान सकते हैं, जिसमें गृहजीवन के हास्यरसिक प्रसंगों का चित्रण है। ''महीपतराम सुधारक प्रवृत्तिवाले थे। कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा जैसे हिंदू धर्म के दंभपूर्ण व्यवहारों को उन्होंने अपने गद्य में नग्न किया।''[91]

इसके अलावा इस समय में हरगोविंददास कांटावाला कृत 'अंधेरी नगरी नो गर्धवसेन', 'स्त्री मंडळने माटे लखायेली घरसंसारी वार्ता', 'बे बहेनो', श्री के खुशरू काबराजी कृत 'दुखियारी वहु', 'भोलो दोलो' आदि समाजिक उपन्यास मिलते हैं।

ई.स. 1887 से गुजराती उपन्यास के क्षेत्र में गोवर्धनराम मा. त्रिपाठी कृत 'सरस्वतीचंद्र' का प्रकाशन होने से ही सामाजिक उपन्यास को वेग मिलता है। ''मोहजाल की प्रक्रिया गोवर्धनराम से प्रारंभ हो जाती है। यह घटना गुजराती उपन्यास के विकास में कुछ जल्दी ही मानी जाती है। नवलकथाकार के रूप में गोवर्धनराम की सबसे बड़ी हिम्मत तो यह देखने को मिलती है कि उन्होंने कथातत्व को मात्र निमित्त. के रूप में स्वीकारने को तैयार हुए। 'रोमान्स' का लाभ छोड़कर उन्होंने वास्तविक भूमिका की बात स्वीकार करने की शक्यता का निर्देशन किया और वह भी उदाहरण देकर।''[92]

'सरस्वतीचंद्र' नवलकथा के अंतर्गत लेखक ने जीवन के वास्तविक प्रश्नों एवं समस्याओं को बौद्धिक स्तर पर रखकर चर्चा की।

''कलाकार के रूप में गोवर्धनराम की बड़ी विशेषता यह है कि 'सरस्वतीचंद्र' के अंतर्गत जीवन के प्रवाह का और उसकी घनता का अनुभव होता है। इतनी सघनता का अनुभव जगत की कम नवलकथाओं में होता होगा।''

'सरस्वतीचंद्र' के अनुकरण में संख्याबद्ध सामाजिक उपन्यास लिखे गये जिसमें मध्यवर्ग में प्रवर्तमान विविध समस्याओं का हूबहू चित्रण हुआ है। इसमें प्रमुखतः बाल विधवा, वृद्ध विवाह, वेश्यावृत्ति, विधवा समस्या, अनैतिक संबंध की समस्या, स्त्री–पुरुष के अनैतिक संबंध की समस्या, दहेज समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, पुनःविवाह की समस्या, अंध विश्वास के कारण प्रवर्तमान विविध समस्याएँ, संयुक्त

परिवार में सास और बहु के बीच प्रवर्तमान विविध समस्याँ, सामाजिक कुरीवाजों का निरूपण इस समय के उपनयासों में हुआ है।

इच्छाराम सूर्यराम देसाई कृत 'गंगा – एक गुर्जर वार्ता' (1888) जिसमें मध्यवर्गीय कुटुंब में सास और बहू के बीच प्रवर्तमान अनबन, क्लेष है। इसके कारण संयुक्त परिवार का बिखराव दिखाया गया है। इस परिवार में क्लेष निमित्ते बनने वाले मुख्य पात्र में सास का पद भुगतान करती हुई ललिता, उसका पति मोहनचंद्र एवम् बड़े बेटे की पुत्रवधु तुळजा को ले सकते हैं। लेखक ने खुद ललिता के सम्बन्द में जो कथन दिया है वह इस बात को अच्छी तरह से चरितार्थ करता है– ''हिंदु सास, सो में से पचहत्तर हिस्सा सर्पणी का काम करती हैं।''[93] सुशिक्षित एवम् सुसंस्कारी गंगा के माध्यम से इस गृह–कंकास से छिन्न–भिन्न कुटुंब को उगारने का प्रयास किया है। यहाँ पर केशवलाल के माध्यम से संयुक्त परिवार को टूटते हुए दिखाया गया है। कमला के माध्यम से विधवा विवाह की समस्या पर लेखक ने प्रकाश डाला है। विधवा कमला की शादी समाज के रुढ़िचुस्त नियमों के कारण नहीं हो पाती। ''युवान विधवा और भावनाशील अपरणित युवक के संवनन का यह अवनवित चित्र रुढ़िचार, बेजोड़ लग्न और विविधता से भरपूर समाज को नई दिशा का दर्शन कराता है।''[94]

कृष्णराव दीवेटिया कृत 'मुकुल मर्दन' में कथा नायिका सुधामुखी का अनमेल विवाह, इन्दुमुखी का बाल–लगन जो बाद में विधवा दिखाई जाती है, उसके पुनःविवाह आदि सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है।

ई.स. 1900 के आसपास गुजराती सामाजिक उपन्यासों के अंतर्गत ततयुगीन मध्यवर्गीयपरिवारों में समाज में प्रवर्तमान समस्याओं पर डॉ. धीरेन्द्र महेता ने ध्यान केन्द्रित किया। ''जाति को ज्यादा महत्व प्रदान करना, परंपरा के प्रति अत्यधिक अहोभाव, प्राचीन हिंदु धर्म की श्रेष्ठता, सनातनता और अपरिवर्तनशीलता के प्रति विश्वास, धार्मिक ग्रन्थों पर ईश्वर प्रणीयता को मान्यता... अकर्मण्यता इष्ट सुधार प्रयास का विरोध।।''[95]

सुमित्र के दो उपन्यास 'अलक्ष्यज्योति' और 'पद्मनाभ' के संयुक्त कुटुंब जो विभक्त कुटुंब में विभाजित होता है, उसे दिखाया गया है।

भोगीन्द्रराव दीवेटिया का उपन्यास 'लग्न बंधन' जो ई. 1916 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कथावस्तु के अंतर्गत नवपरणित युगलों की लग्न सम्बंधी आकांक्षाओं को केन्द्रित किया गया है। स्त्री–शिक्षा, नारी

स्वातंत्र्यता पर बल दिया गया है। फलस्वरूप आदर्श नारी का स्वरूप धारण कर सके उपन्यास के अंतर्गत मदनलाल को उषा जैसी उद्धत लड़की से शादी करके विविध समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उसने स्त्री के आंतरिक रूप से ज्यादा बाह्य रूप को प्रधानता दी थी जिसके कारण उसके दाम्पत्य जीवन में कोलाहल मच जाता है। इस उपन्यास में स्त्री के माध्यम से समाज सुधारक विचारों को प्रस्तुत किया गया है।

ई.स. 1916 में भूधरलाल बाला और हीरालाल रणछोडलाल पटेल कृत 'स्नेहलता' उपन्यास के अंतर्गत मध्यवर्गीय समाज में प्रवर्तमान बाल-लग्न, कन्या विक्रय, वृद्ध लग्न जैसी समस्याओं को उठाया गया है।

ई.स. 1917 में भोगीन्द्रराव कृत उपन्यास 'सोलिसिटर' के अंतर्गत शंभुलाल और उनकी पत्नी रमणी के माध्यम से सकल दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी का आपसी सहवास को जरुरत के रूप में दिखाया गया है। इसके अलावा विधवा पुनर्लग्न की समस्या को उकेरा गया है। चंपकलाल को अपनी विधवा बेटी प्रभावती का पुनर्विवाह करवाने के लिए समाज में प्रवर्तमान रुढ़िचुस्तों का विरोध करना पड़ता है। ''ज्ञाति की जड़ता ने उसके सभ्यों के मानस को बंधा हुआ बना दिया था। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष, जोहुकमी ने ज्ञाति के उत्कर्ष को अटका दिया था। दूसरी तरफ ज्ञातिसंस्था का वर्चस्व इतना था कि उसकी उपेक्षा करना अशक्य था। भोगीन्द्रराव कृत 'उषाकान्त', 'सोलीसिटर' जैसी कृतियों में इसका चित्र मिलता है।''[96]

हिन्दु रीत-रिवाजों के कारण मध्यमवर्गीय परिवारों के व्यक्तियों के विभिन्न अन्यायपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यहाँ इस उपन्यास में भी प्रभावती को मजबूरन कम उम्र में वैधव्य को निभाना ही पड़ता है। प्रभावती के पिता चंपकलाल का विलाप दृष्टव्य है। ''प्रभा वैधव्य भुगते और लगभग उसके जितनी उसकी उसकी माता सौभाग्यवती के सुख भुगते। पुत्री विधवा और पिता गृहस्थाश्रम भुगते।''[97] यहाँ पर प्रभावती का पुनर्लग्न शंभुलाल के पुत्र किशोर के साथ होता है, लेकिन यह नसीहत देनेवाले शिवलाल को जाति से बाहर कर दिया जाता है। यहाँ पर इस उपन्यास में लेखक ने मध्यमवर्गीय युवापीढ़ियों में पनपते हुए प्रेम प्रकरण का वर्णन भी किया है।

ई.स. 1927 के अंतर्गत रमणलाल देसाई ने भी 'सरस्वतीचंद्र' से प्रेरित होकर 'शिरीष' नामक सामाजिक उपन्यास लिखा। जो मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा था। इसके अंतर्गत पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन में प्रवर्तमान विभिन्न समस्याओं का उल्लेख है। ''उपन्यास के नायक-नायिका शिरीष और

सोहिणी में सतत जागृत रहता हुआ स्वाभिमान, समानता का आग्रह, असामंजस्य, उसमें से प्रवर्तमान संशय आदि के निमित्त होने से एक–दूसरे से दूर हो जाते हैं।''[98]

'कोकिला' ई.स. 1928 में प्रकट हुआ उनका दूसरा उपन्यास है। जिसमें स्त्री का पुरुष के जीवन उत्थान में जो महत्व है, उसे दर्शाया गया है। ई.स. 1931 में प्रकट हुआ 'स्नेहदल' उपन्यास में आर्थिक व्यवस्था के कारण नायक कीरीट के जीवन में प्रवर्तमान विभिन्न समस्याओं को दिखाया है। उसके साथ–साथ मध्यमवर्ग किस तरह परिस्थितियों के सामने जूझता हुआ जीवन में प्रगति करता है, उसे दिखाया गया है। आर्थिक विपन्न परिस्थिति के कारण किरीट के माता–पिता की मृत्यु हो जाती है, अपनी प्रियतमा से शादी नहीं हो पाती, उसकी तेजस्वी कारकिर्दी भी मिट्टी में मिल जाती है।

''रमणलाल देसाई कृत दिव्यचक्षु (1933) उपन्यास के अंतर्गत आज भी हम लोगों को उसमें तत्कालीन समाज जीवन, उसकी समस्याएँ तुरंत ही देखने को मिलती हैं।''[99]

उपन्यास का मुख्य कथा नायक मध्यवर्गीय अरुण है, जो पहले राष्ट्रीय आन्दोलन को वेग देने हिंसा के मार्ग पर चलता है और बाद में जनार्दन के संपर्क में आने से अहिंसा में मानने लगता है। अरूण जेलखाने में आग लगाने से अपने चर्मचक्षु को खोकर दिव्यचक्षु प्राप्त करता है। ''उपन्यास के मुख्य विषय की तरह अन्य विषयों – फरजियात वैधव्य की करुणता और छूआछूत की प्रथा के कारण प्रवर्तमान विसंगति को भी समसामायिक परिस्थिति के साथ संबंध हैं।''[100] इस उपन्यास में जनार्दन विधवा सुशीला के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करता है। जिसके कारण सुशीला गर्भवती होती है, लेकिन समाज के विरोध के डर से उसमें भी युवापीढ़ी में प्रवर्तमान पलायनवादी वृत्ति देखने को मिलती है। वह भी सुशीला को छोड़कर चला जाता है। ''इस उपन्यास में गाँधीजी ने शुरु किया हुआ अहिंसक सत्याग्रह की लड़ाई, अस्पृश्यता निवारण, सफाई कार्यक्रम, ध्वजफेरी, विधवा–विवाह, निःसंतान, संतान के प्रश्न, दारुबंदी, अंग्रेजों के रहन–सहन, श्रमिकों का पूँजीवादियों द्वारा होता शोषण जैसे प्रश्नों को वाणी दी गई है। इस तरीके से यह उपन्यास उस समय के दस्तावेज को प्रदान करता है।''[101]

'अधूरी आशा : ईमारत' (1930) उपन्यास के अंतर्गत गमनलाल हीरालाल बछानी ने मध्यवर्ग में प्रवर्तमान वेश्या समस्या को उजागर किया है। शशी जो समाज के द्वारा अत्याचार सहन करने के कारण पतिता के (वेश्या के) वहाँ आश्रय लेती है, लेकिन अंत में अनंत ने उसका स्वीकार करके धर्मपत्नी बनाया। 'समाज नो सडो' नामक उपन्यास में भी अर्थ के कारण मध्यवर्गीय युवती जो वेश्या का रास्ता अपनाती है,

जिससे जीवन निर्वाह समस्या को उठाया गया है। यहाँ पर लक्ष्मी नामक वेश्या की समस्याओं को, उसकी विपन्न स्थिति को उठाया गया है।

ई.स. 1931 में रमणलाल देसाई का 'पत्रलालसा' उपन्यास प्रकट हुआ जिसके अंतर्गत निम्न मध्यवर्गीय परिवार की लड़की अपने ही कुटुंब की आर्थिक परिस्थिति के कारण स्वेच्छा से वेश्यावृत्ति को अपनाकर रोजी–रोटी की व्यवस्था करती है।

रतनशी फरामजी (1933) द्वारा रचित 'छत्ते वरे रंडायो' नामक उपन्यास के अंतर्गत मध्यवर्गीय पति–पत्नी के बीच प्रवर्तमान शंका–कुशंका, गलतफहमी, अविश्वास के कारण सुखी दाम्पत्य जीवन में दरार पैदा हो जाती है, जिसके कारण पत्नी को पति द्वारा त्यज दिया जाता है। पूरी जिन्दगी पति होने के बावजूद भी विधवा की तरह जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

इसके बाद के उपन्यास के अंतर्गत ग्राम–समाज को उकेरा है। ग्राम्य समाज में व्याप्त विभिन्न अंधश्रद्धा, वहम, शंका–कुशंका, आपसी द्वेष, चड़सा–चड़सी, मिथ्या आडम्बर आदि को चित्रित करने की कोशिश की है। ''इस समय अवधि के गुजराती उपन्यासकारों का ध्यान हमारे गाँव की विषम परिस्थिति की ओर भी खिंचा है। ग्राम्य प्रजाओं के अंतर्गत फैला हुआ प्रमाद, आर्थिक और मानसिक निम्न स्तर, खटपट आदि अनिष्टों से गाँव की दुर्दशा होती चली जाती थी।''[102]

'ग्रामलक्ष्मी' के अंतर्गत कृति नायक अश्विन भी बेकारी की समस्या से पीड़ित होकर आत्महत्या के लिए प्रेरित दिखाया जाता है, लेकिन बाद में ग्रामोत्कर्ष की प्रेरणा होने से गाँव में वापस आ जाता है। यहाँ पर गाँव का उद्धार करने के लिए वह खुद ही किसान, शिक्षक और नेता बनने का निश्चय करता है। इस कारण उसके मार्ग में पैदा होनेवाले अवरोध को भी लेखक ने दिखाया है। इस उपन्यास में ''शिक्षित लोगों को ग्राम्य सेवा कार्य में भाग लेते समय अनुभव में आते हुए मनोमंथन को भी लक्ष्य में लिया हुआ है।''[103] इसके बाद गाँधीजी के ग्रामोद्धार विचारों से प्रेरित होकर पन्नालाल पटेल, इश्वर पेटलीकर, पीतांबर पटेल, चुनीलाल मडीया, पुष्कर चंदरवाकर, रामनारायण ना. पाठक, सारंग बारोट आदि मुख्य उपन्यासकारों ने उपन्यास प्रदान किए।

पन्नालाल पटेल कृत 'वळामणां', 'मळेलां जीव', 'भीरु साथी', 'यौवन', 'वात्रक ने कांठे', ईश्वर पेटलीकर कृत 'लखया लेख', पीतांबर पटेल कृत 'रसियो जीव', 'धरतीनां अमी', 'घरनो मोभी', 'परिवर्तन', 'खेतरने खोळे', चुनीलाल मडिया कृत 'व्याजनो वारस', 'कुमकुम' और 'आशका', 'लीलुडी

धरती', 'शेवाळनां शतदल', रामनारायण ना. पाठक कृत 'आवती काल', 'मानवतानां फूल', 'साथी और सोहाग', सारंग बारोट कृत 'नारी नमणुं फूल', 'एक डाळनां पंखी', उमाशंकर जोशी कृत 'पारकां जण्या', गोविंदभाई कृत 'अधूरी वात', 'अधुरुं जीवन', शायर शायदा कृत 'नवो संसार', मधुकर कृत 'लोहीनो व्यापार' आदि सामाजिक उपन्यास हैं।

ई.स. 1939 के अंतर्गत दर्शक कृत 'कल्याण यात्रा' नामक सामाजिक उपन्यास में मध्यवर्गीय सुखलाल मास्तर की आर्थिक, मानसिक और शारीरिक क्षणभंगुर स्थिति का विवरण दिया गया है।

झवेरचंद मेघाणी कृत 'वेविशाळ' (1939) और 'तुलसीक्यारो' (1940) भी सामाजिक नवलकथा हैं। 'वेविशाळ' के अंतर्गत दिखाया गया है कि ग्राम्य निम्न और मध्य–मध्यमवर्गीय समाज में बचपन में ही लड़कियों की मंगनी तय की जाती है। यहाँ पर इस उपन्यास में शहरी सुशीला की मंगनी बचपन में ही ग्रामीण सुखलाल के साथ कर दी जाती है, लेकिन जाति के डर की वजह से चंपकलाल (सुशीला के पिता) उसे फोक (रद्द) भी नहीं कर सकते।

'तुलसी क्यारो' (1940) में सांस्कृतिक असलियत संयुक्त कुटुंब में रक्षित उदारता, त्याग, सहिष्णुता, सेवापरायणता आदि जैसे मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है, जो व्यक्ति के जीवन को छिन्न–भिन्न होने से बचा लेते हैं। 'तुलसी क्यारो' ऐसे जीवन संरक्षक संयुक्त कुटुंब का प्रतीक है।''[104]

''मळेला जीव (1941) उसके लेखक और गुजराती साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है।''[105] यह देखा जाय तो सामाजिक पुण्यकथा है, जिसके अंतर्गत कानजी जैसा बहादूर युवक भी समाज के डर से जीवी को जीवनसाथी नहीं बना सकता। इस उपन्यास में जीवी को पारिवारिक समस्याओं का जो सामना करना पड़ता है, उसका भी उल्लेख है। ''कानजी और जीवी के जीवन उनके कार्यों और स्वभाव के कारण दुःखमय बन जाते हैं। छोटी सी भूल दुःख का समुद्र छलकाती है और जीवन वेदनामय बन जाता है। उसके बावजूद भी उनके व्यक्तित्व के बल पर विषम परिस्थिति के सामने भी दोनों टिके रहते हैं।''[106]

चिमनलाल त्रिवेदी कृत 'भावसागर' (1951) मध्यमवर्गीय नारी की समस्त समस्याओं को प्रकट करता हुआ सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में नायिका सूरज है, जो करुणामूर्ति के रूप में चित्रित है। ''भवसागर नायक बिना का उपन्यास है, भवसागर का विकट प्रवास करते हुए निराधार, असहाय नारी की वितक कथा है। ग्राम्य समाज के अन्यायपूर्ण और दमनकारी व्यवहारों के बीच, नियति प्रेरक दुःखों और वेदनाओं के बीच, दबाते–जलाते–रुलाते हुए भी स्वत्व से अंत तक टिकी रही, समाज में दिखती आशा–

लकीर नाकामयाब निकली, समाज समुद्र में करुण तरह से पुत्री के साथ डूबकर खुमारयुक्त नायिका की मृत्यु की करुण कथा है। उपन्यास के केन्द्र में ग्राम समाज है। ग्राम समाज की ज्ञातिप्रथा है। ज्ञाति प्रथा के प्रपंचों और पंचों, बदव्यवहारों और वहमों, षडयंत्र और पक्षपात, शंका, शुद्रता, लालच और कटुताओं के बीच व्यथापूर्ण जीवन व्यतीत करती, दो संतानों की माता, सूरज की भार्या, हृदय को छीनकर रख देनेवाली कथा 'दो जीवों की करुण आहुति' लेकर पर्यवसान को पहुँचती है। भाई–बहन के उल्लासपूर्ण, स्नेहयुक्त चित्र से प्रारंभ होकर माता–पुत्री के अपमृत्यु के करुण चित्र से सिमटकर रह जाता है। प्रारंभ में विचार–सागर में बेली–सूरज कथा के अंत में भवसागर में डूबकर मर जाते हैं।''[107] इस प्रकार इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय नारी की व्यथा–कथा है।

ईश्वर पेटलीकर कृत 'मारी हैया सगडी' भी बिना नायक का उपन्यास है। इसकी नायिका मध्यमवर्गीय शिक्षित नारी है। साहसिक वृत्ति भी नायिका में अंतर्निहित है। 'चित्रलेखा' का पति पागल है। नायिका जातीय संतोष प्राप्त न होने से दुखी है यह बात उसके लिए असह्य नहीं है। वह अपना स्वरक्षण खुद कर सकती है, लेकिन पति पागल होने से पति की प्रतिष्ठा के अभाव में उसे विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है इस बात का लेखक ने मार्मिक ढंग से आलेखन किया है।

'तरणा ओथे डुंगर' के अंतर्गत बाल–लग्न समस्या को लेखक ने निरुपित किया है। इसके अंतर्गत अल्पशिक्षित विजया और प्रोफेसर बने हुए केशव के बेमेल विवाह का प्रश्न उठाया गया है। 'ऋणानुबंध' के अंतर्गत मध्यमवर्गीय समाज के युवक–युवतियों में प्रवर्तमान यौन–समस्या को उठाय है। सुबंधु की पत्नी कृत्तिका लग्न के बाद भी पर्जन्य के साथ शारीरिक संबंध स्थापित रखती है। वहाँ पर एक और पात्र आश्लेषा द्वारा निम्न मध्यमवर्ग की आर्थिक परिस्थिति का निरूपण किया गया है। आश्लेषा अपने परिवारजनों के पालन–पोषण के लिए नौकरी करती है और इस कारण वह विवाह के सुख से वंचित रहने का फैसला करती है।

हर्षद त्रिवेदी कृत 'लीलुडी धरती' उपन्यास के अंतर्गत ''गोबर और संतु के पात्र के अंतर्गत अनुवैवाहिक साहजिक सुख–दुख पूर्ण दाम्पत्य जीवन का चित्रण है।''[108]

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर पूर्व गुजराती सामाजिक नवलकथा के अंतर्गत लेखक ने मध्यमवर्गीय समाज एवम् परिवारों में प्रवर्तमान तद्‌युगीन समाज समस्याओं का आलेखन बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है। ''सुधार के प्रश्न, उससे जुड़ी हुई चर्चाएँ, अभिप्राय इन सभी तत्वों ने उस समय की साहित्यि कृतियों

में छूट से जगह बना ली है।''09

इस समय के उपन्यासों के अंतर्गत हिंदू जाति की विभिन्न रुढ़ियों एवम् अनुचित रिवाजों आदि का निरूपण किया है। जाति रिवाजों के पीछे प्रवर्तमान कौटुंबिक घमंड का भी निरूपण किया है। पतिप्रेम या पुत्र प्राप्ति की झंखना, सास–ननद के त्रास, समाज, सगे–संबंधी, अड़ोस–पड़ौस के द्वारा सुनाई जाती खरी–खोटी बातें आदि से मुक्ति पाने के लिए दूसरा विकल्प न होने से हिंदू स्त्री आखिर में धूर्त साधु–महात्मा का आसरा लेती है, जिसके कारण आर्थिक स्तर के साथ–साथ शारीरिक स्तर पर भी लुटती चली जाती है। उसके पीछे का कारण वहम और अंधश्रद्धा ही हैं। इन बातों का भी निरूपण गुजराती उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में किया है। गुजराती उपन्यासकारों ने उस समय प्रवर्तमान बहुपत्नीत्व की प्रथा के कारण स्त्रियों पर होते विभिन्न अत्याचारों का वर्णन किया है। ''समाज–सुधार के उपलक्ष्य में और उपन्यास के लिए विषयवस्तु पसंदगी के उपलक्ष्य में लग्न का प्रश्न स्त्री के व्यक्ति स्वातंत्र्य के संदर्भ में विचारशील नहीं था। उससे जुड़ी हुई अनिष्ट रुढ़ियों ने भी उस ओर ध्यान खींचा था। इन रुढ़ियों में प्रमुख तत्व वृद्ध विवाह, बाललग्न, बेमेल विवाह, कन्या विक्रय, बहुपत्नीत्व, फरजियात वैधव्य, सतीप्रथा आदि का समावेश होता है।''110

इन समस्याओं के अलावा गुजराती सामाजिक उपन्यासों में मध्यमवर्ग में युवा–पीढ़ी के आंतरजातीय लग्न, लग्न पूर्व प्रेम, रुढ़िगत दाम्पत्य जीवन में प्रवर्तमान विभिन्न समस्याएँ, लग्न जीवन में सहवास का महत्व, लग्न–विच्छेद, संयुक्त कुटुंब प्रथा और उसके कारण प्रवर्तमान विभिन्न समस्या, नारी की दुर्गति आदि का आलेखन हुआ है।

* * * * *

संदर्भ सूचि

1. समाजशास्त्र की प्राथमिक अवधारणाएँ पृ. 83, 84
2. F.H. - Principal of Society
3. Cooley C.H. - The Social Process
4. Odum H.W. - Understanding of Society
5. मैक आइवर – सी.एच. पंज. Society पृ. 77
6. A. R. Deasi समाज–2, पृ. 42
7. P.M. Thomas – भारतीय मध्यमवर्ग और सामाजिक उपन्यास – पृ. 25
8. – वही– पृ. 28
9. – वही – पृ. 29
10. Pavan Verma : The Great Indian Middle Class - P. 171
11. रामजीसिंह – समाज दर्शन के मूल तत्व – पृ. 274
12. लॉयड वार्णे एण्ड पॉल स्टन्ट : द एस्टेट सिस्टम ऑफ मोर्डन कम्यूनिटी – अध्याय–1
13. डॉ. हेमेन्द्र पानेरी – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण – पृ. 204
14. – वही – पृ. 205
15. जी. एस. घुरे – कास्ट, क्लास एण्ड ओक्युपेशन, पृ. 290
16. रिचार्ड सेन्टर्स : दि साइकॉलोजी ऑफ द सोश्यल क्लासेज, पृ. 21
17. ऑक्सफोर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी
18. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश – पृ. 473
19. चेम्बर्स डिक्शनरी टुयन्टिएथ सेन्चुरी
20. वेब्सटर्स न्यू ट्यून्टिएथ सेन्चुरी डिक्शनरी, भाग–2
21. डॉ. वी.बी. मित्र – द इंडियन मिडिल क्लासेज – पृ. 343
22. डॉ. पी.एम. थॉमस – भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास, पृ. 35
23. डॉ. मंजुलता सिंह : हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्ग, पृ. 5

24. भूपसिंह भूपेन्द्रः मध्यमवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, पृ. 25
25. डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास एक अंतर्यात्रा : पृ. 133
26. राजेन्द्र यादव : प्रेमचंद की विरासत और अन्य निबन्ध, पृ. 121
27. डॉ. नासिक अहमदखान – मिडिल क्लासेज इन इन्डिया, पृ. 15
28. डॉ. राधाकृष्ण मुकर्जी : अरबन मिडिल क्लास 'क्लाइम्बर्स' (भूमिका)
29. भूपसिंह भूपेन्द्र : मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, पृ. 11
30. डॉ. बलजीतसिंह – अरबन मिडिल क्लास क्लाइम्बर्स, पृ. 3
31. डॉ. बी.बी. मित्र : दि इण्डियन मिडिल क्लास : देयर ग्रोथ इन माडर्न टाईम्स
32. भूपसिंह भूपेन्द्र : मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, पृ. 13
33. बीणा गौतम : आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना, पृ. 25
34. राजेन्द्र यादव : हिन्दी उपन्यास तीन दशक, पृ. 100
35. डॉ. पी.एम. थॉमस : भारतीय मध्यमवर्ग और सामाजिक चेतना
36. प्रो. जी.एस. घुरये : कास्ट, क्लास एण्ड कल्चर, पृ. 17
37. समवेत (त्रैमासिक), अंक पाँच, पृ. 12
38. बी.बी. मिश्र : दि इण्डियन मिडिल क्लासेज – पृ. 343
39. ए. आर. देसाई : सोशल बेकग्राउन्ड ऑफ इण्डियन नेशनेलिज़्म, पृ. 182
40. डॉ. एम. वेंकटेश्वर : आठवें दशक के हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. 12
41. जयश्री बारहटे : हिन्दी उपन्यास : सातवाँ दशक – पृ. 20
42. डॉ. महावीर लोढ़ा : हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन, पृ. 32
43. राजनाथ शर्मा : साहित्यिक निबंध, पृ. 522–523
44. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 27
45. सुषमा प्रियदर्शिनी : हिन्दी उपन्यास, पृ. 55
46. आर.सी. मजमूदार : एन एडवांस्ड
47. डॉ. मंजुलतासिंह : हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्ग, पृ. 19
48. बीना श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यमवर्गीय चेतना, पृ. 39

49. बीना श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास का विकास, पृ. 38
50. डॉ. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, पृ. 55,56
51. Balram and Manish Rai : हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष, पृ. 19
52. आचार्य रामचन्द्र शुकल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 477
53. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ. 128
54. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य , पृ. 138
55. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ. 130
56. किशोरीलाल गोस्वामी : माधवी माधव व मदनमोहिनी, पृ. 75–76
57. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ. 106
58. डॉ. कैलाश प्रकाश : प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यास, पृ. 180
59. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्म इतिहास, पृ.
60. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास, पृ. 101
61. डॉ. कुँवरपालसिंह : हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृ. 40
62. जयशंकर प्रसाद : कंकाल, पृ. 53
63. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ. 36
64. कंकाल के प्रकाशकीय वक्तव्य से उद्‌धृत

    भूपसिंह भूपेन्द्र : मध्यमवर्गीय और हिन्दी उपन्यास, पृ. 58
65. जयशंकर प्रसाद – तितली – पृ. 109
66. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ. 7
67. डॉ. रामविलास शर्मा – निराला, पृ. 126–127
68. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ. 310
69. डॉ. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास : उद्‌भव और विकास, पृ. 312
70. डॉ. ललित शुक्ल : उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पृ. 13
71. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ. 306
72. घनश्याम 'मधुप' : हिन्दी लघु उपन्यास, पृ. 40

73. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : प्रेमचंद – एक विवेचन, पृ. 5
74. बीना श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यमवर्गीय चेतना, पृ. 62
75. डॉ. गीता लाला : प्रेमचन्द का नारी चित्रण, पृ. 411
76. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास –उद्‌भव और विकास, पृ. 184
77. बीना श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यमवर्गीय चेतना, पृ. 90
78. डॉ. प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक विकास, पृ. 246
79. – वही – पृ. 246
80. भूपसिंह भूपेन्द्र : मध्यमवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, पृ. 99
81. डॉ. रवीन्द्र शर्मा : सामाजिक विचारधारा, पृ. 491
82. भूपसिंह भूपेन्द्र : मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, पृ. 126
83. उपेन्द्रनाथ अश्क : गिरती दीवारें, पृ. 21–22
84. सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृ. 116
85. डॉ. इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी उपन्यास एक नयी दृष्टि, पृ. 38
86. सुषमा प्रियदर्शिनी : हिन्दी उपन्यास, पृ. 174–175
87. डॉ. सरोजिनी त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास, पृ. 210
88. माहेश्वरी : शेखर एक जीवनी – आलोचना, पृ. 24
89. सावित्री सिन्हा : तुला और तारे, पृ. 64
90. अमृतलाल नागर : बूँद और समुद्र, पृ. 3
91. डॉ. विजय शास्त्री, डॅ. चंद्रकांत गांधी 'सुहासी', डॉ. अश्विन देसाई– गुजरातनां भाषा साहित्य पर आधुनिकरणनो प्रभाव, पृ. 28
92. रघुवीर चौधरी और राधेश्याम वर्मा–गुजराती नवलकथा, पृ.5
93. ईच्छाराम सूर्यराम देसाई कृत गंगा – एक गुर्जर वार्ता, पृ. 155
94. डॉ. धीरेन्द्र महेता – नंदशंकर थी उमाशंकर – पृ. 87
95. डॉ. धीरेन्द्र महेता – नंदशंकर थी उमाशंकर, पृ. 90
96. डॉ. धीरेन्द्र महेता – निसबत – पृ. 10

97. भोगीन्द्रराव – सोनिस्टर, पृ. 59–60
98. डॉ. धीरेन्द्र महेता : नंदशंकरथी उमाशंकर, पृ. 167
99. शिरीष पंचाल – नवलकथा, पृ. 89
100. धीरेन्द्र महेता – नंदशंकरथी उमाशंकर, पृ. 197
101. शिरीष पंचाल–नवलकथा, पृ. 89
102. वही, पृ. 208
103. वही, पृ. 211
104. डॉ. धीरेन्द्र महेता : नंदशंकरथी उमाशंकर, पृ. 295
105. बाबू दावलपुरा, नरेश वेद – गुजराती कथा विश्व, पृ. 139
106. वही, पृ. 143
107. वही, पृ. 209
108. वही, पृ. 237
109. धीरेन्द्र महेता : निस्बत, पृ. 2
110. वही, पृ. 40

* * * * *